# भारत के महान साधक

## षष्ठ खण्ड

प्रथम प्रकाशन, आषाढ़, १९८२ ई०

प्रमथनाथ भट्टाचार्य

नव भारत प्रकाशन, दरभंगा

# भारत के
# महान साधक

# भारत के महान साधक

षष्ठ खण्ड

प्रमथनाथ भट्टाचार्य
अमलेन्दु दास गुप्त
रानी चंदा

नव भारत प्रकाशन

प्रथम प्रकाशन
आषाढ़, १९८२

अनुवादक :
**श्री जगदीश्वर प्रसाद सिंह**

प्रकाशक :
**निर्भय राघव मिश्र**
नव भारत प्रकाशन
लहेरियासराय
दरभंगा (बिहार)



प्रच्छद पट :
**श्री सुप्रकाश सेन**

मुद्रक :
**श्याम प्रिन्टर्स**
बड़ा बाजार, दरभंगा

मूल्य : बीस रुपये मात्र

श्री कालीपद गुहा राय

जिनकी महती कृपा से
'भारत के महान साधक'
का प्रकाशन संभव
हो सका
उन्हीं महापुरुष
श्री कालीपद गुहाराय के कर-कमलों में
प्रकाशक द्वारा समर्पित

# आमुख-

मानव इतिहास के प्रारंभिक दिनों से ही महर्षि याज्ञवल्क्य के रुप में एक दिव्य आध्यात्मिक ज्योति रहस्यमय एवं अद्भुत रुप से विश्व-कल्याण के लिए सतत क्रियाशील रही है । मानव जाति की महानिशा की वेला में इस ज्योति ने बार-बार प्रकट होकर उसका दिशा निर्देश कर उसे नवजीवन प्रदान किया है। वैदिक युग में इसने आर्यों को नयी समाज व्यवस्था तथा आध्यात्मिक पथ दिया। त्रेता में इस महान शक्ति ने अन्य ऋषियों के साथ अग्रणी हो रामावतार का कार्य पूरा किया,तत्पश्चात द्वापर में प्रच्छन्न रुप से कार्य करते हुए कृष्ण द्वारा संचालित महान उथल-पुथल का भी परिचालन किया।

महाभारत युद्ध के छः हजार वर्ष बाद पुनः मानव जाति स्वरचित विकृतियों के जाल में उलझकर विकल हो रही है । भोग-विलास की आपाधापी में व्यस्त असहाय मानव वंश अपने सर्वनाश की ओर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है। परन्तु मानव वंश के सम्पूर्ण संहार का समय अभी नहीं आया है, इसलिए इसकी रक्षा की जा सकती है। इस महा विनाश की काली छाया की पृष्ठभूमि में समग्र सृष्टि के कल्याण के लिए वही महर्षि याज्ञवल्क्य, जिनके बारे में कहा जाता है कि यज्ञ ही उनका वल्कल है, पुनः सृष्टि के उद्धार के यज्ञ में सन्नद्ध हैं। अग्नि पुराण के १६ वें अध्याय में बुद्धावतार कथानम् में उनका उल्लेख आया है जिसमें कहा गया है–"कल्कि विष्णु यशः पुत्रः याज्ञवल्क्य पुरोहितः" ।

मानव इतिहास के इस संक्रमण काल में यह महान प्रकाश श्री कालीपद गुहाराय के स्वरुप में भासित हुआ—जिन्हें हम स्नेहवश दादा कहा करते थे।

उन्हीं दादा के संस्मरणात्मक लेखों को इस ग्रंथ में संग्रहीत किया गया है। आने-वाला इतिहास युग-परिवर्त्तन कारी उनके नवीन आविर्भाव की चर्चा करेगा। उनके संस्मरणों को आज स्वयं मैं लिखने में असमर्थ हूँ। आश्विन शुक्ल षष्ठी (१९ अक्तूबर १९६६) को मेरे बाहु बन्ध में वे अपने प्राणों का विसर्जन कर मुझे प्रेम के नये बंधन में डाले गये।

हम सब जा रहे हैं; युग को कह जाना चाहते हैं कि तुम्हारे इशारों पर नाचकर, हम तुम्हें पथ भ्रष्ट करने का महापाप नहीं करेंगे। काल के प्रवाह में, कालदण्ड से प्रताड़ित हो, युग को, रवीन्द्रनाथ रमण महर्षि और गाँधी की बातें याद आयेंगी। आज ऐसे महापुरुष की जरुरत है जिसमें प्रेम और ज्ञान के साथ, शक्ति का महादण्ड भी हो, माँ की तरह, मानव-जाति को अपनी करुणामयी गोद में लेकर, कठोर हो उसका ऑपरेशन करा सके—

जौं शिशु तन व्रण होई गोसाईं
मातु चिराव कठिन की नाईं।

ऐसे युगपुरुष के आने का समय आ गया है, जिसके हृदय में अनन्त प्रेम होगा, अन्तर में पूर्ण ज्ञान होगा और बाहुओं में दुर्धर्ष वल होगा।

जिज्ञासुओं को यह ग्रंथ अध्यात्म शिखर पर आरोहण की प्रेरणा दे इस कामना के साथ—

***रामनन्दन***

बुद्ध पूर्णिमा' ८२

# प्रकाशकीय

'भारत के महान साधक' के छठे खंड को प्रकाशित करते हुये हमें अपार हर्ष हो रहा है। पिछले खंडों में हम विभिन्न महापुरुषों की जीवनी देते रहे हैं। उस दृष्टि से यह खंड कुछ भिन्न है। क्योंकि इस खंड में हम केवल परम पूज्य श्री कालीपद गुहाराय की विभिन्न लोगों के संस्मरण ही प्रकाशित कर रहे हैं। युग परिवर्त्तन के महान कार्य की भूमिका तैयार करने के लिए ही उनका अवतरण हुआ था। इसी घटना के महत्व को ध्यान में रख कर ही यह खंड पूर्णतः परम पू० श्री कालीपद गुहाराय से संबंधित है।

आज विश्वाकाश हिंसा,घृणा,द्वेष,अन्याय आदि से तिमिराच्छादित है। मानव जाति के हृदय को कँपा देनेवाली इस महानिशा में,'भारत के महान साधक'के छठे खंडका प्रकाशन अपना एक विशेष महत्व रखता है। आशा है यह पुस्तक युगान्तकारी और अवतार कार्य करने के लिए युगान्त की इस वेला में हमें प्रेरणा देगी, उन्मुख करेगी।

इस खंड के मूल लेखकों के प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। बंगला के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में निकले इन संस्मरणों को इकट्ठा कर हिन्दी में अनुवाद करने का कठिन कार्य पूर्ण मनोयोग से आदरणीय श्रीजगदीश्वर प्रसाद सिंहजी ने किया। इस कार्य के लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। सारे देश के सब

क्षेत्रों के महानुभावों से हमें हर तरह की सहायता मिली है। उनकी सहायता के बिना इसका प्रकाशन कभी संभव नहीं होता। इस अवसर पर उन सब महानुभावों के प्रति हम अपना आभार प्रकट करते हैं।

अंत में हिन्दी जगत् के सुधी, सत्यान्वेषी एवं अध्यात्म में रुचि रखने वाले पाठकों के समक्ष यह ग्रंथ प्रस्तुत है जिन्हें ही इस ग्रंथ की महत्ता एवं उपादेयता के संबंध में निर्णय लेना है।

निर्भय राघव मिश्र

# विषय-सूची

# तुम कौन ?

ओ ! सिद्धतपी अवधान रती
तुम साध रहे हो कौन साधना
इस जनाकीर्ण नगरी में ?
कौन हिमाद्रि से तुम निश्चल
कोमल शान्त खड़े अविकल
इस ताप बीच तुम उष्ण पवन में ?
मानवता की काल-रात्रि में
कौन जलाये देव खड़े तुम
अग्नि शिखा हिम आवरणों में ?
किस दिव्य आविर्भाव हित है
शक्ति-भक्ति का संग अलौकिक
साधित तेरे प्राण तन्तु में ?
माँ की ममता भरा हृदय ले
विश्व देव का कोष लुटाते
कौन व्यथित भव-प्राणों में ?
विश्व-वन्द्य की विगलित करुणा
साकार बनी आई भू पर क्या
कलि धर्म पलटने-मर्त्य देह में ?
हे देव ! बोलो दिवस कितने
ज्योति अन्तर ढँक सकोगे
आवरण के छद्म पट में ?
चिन्मयी वह विश्व धारा
प्रस्फुटित किस काल होगी
अवगुंठिता प्रति रोम में ?

१९६३ — रामनन्दन

# इसी महानगरी में

[ इस कहानी में वर्णित घटना, योगीश्वर श्री कालीपद गुहराय की बहुत सी कृपा–लीलाओं में से एक है । मेरे घनिष्ट मित्र, पत्रकार तथा साहित्यिक स्व० श्रीअनलेन्दु दास गुप्त ने इस रचना में कलकत्ता स्थित योग सिद्धिदाता महात्मा के नाम से जिनका उल्लेख किया है, वही हैं श्रीगुहराय। काफी दिन पहले की यह रचना अध्यात्मरस-पिपासु व्यक्तियों के लिये यहाँ प्रकाशित है ।—'हिमाद्रि' सम्पादक ]

हरिद्वार के समीप ही, हिमालय के क्षेत्र में, लगभग पचास वर्ष के एक साधु,एक वृद्ध महात्मा के पैर दोनों हाथों से पकड़ कर अनवरत रो रहे हैं।

अरे क्या हुआ ?

साधुजी ने रुद्ध स्वर में कहा, बाबा कृपा कर मुझ पर कृपा कीजिये ।

वृद्ध की अवस्था कई सौ वर्ष की होगी, परन्तु देखने से तीस वर्ष से अधिक की अवस्था दृष्टिगोचर नहीं होती । साधु की पीठ पर हाथ रख कर उन्होंने कहा, 'उठ बेटा' ।

इस आदेश को आश्वासन सा समझ कर साधुजी उठ बैठे और हाथ जोड़े, तथा अश्रुपूरित नेत्रों से बार-बार यही प्रार्थना करने लगे,---बाबा, मुझ पर कृपा कीजिये ।

वृद्ध ने शांत स्वर में कहा, एक जन्म और प्रतीक्षा करनी होगी बेटा, गुरु ने जो दिया है, उससे अधिक इस जन्म में तुम्हारे भाग्य में नहीं है।

—नहीं बाबा, आप कर सकते हैं। दया कीजिए।

—नहीं बेटा, यह संभव नहीं है। मेरे लिये तो यह दूर की बात है, महामहायोगियों के लिये भी यह संभव नही है कि विधान का उल्लंघन कर सकें। दुःख क्यों कर रहे हो? गुरु की कृपा से अच्छी अवस्था में ही तो हो!

—नहीं बाबा, इसी जन्म में मुझ पर दया कीजिये।

—इस दुनियाँ में किसी के भी वश में नहीं है कि इससे अधिक कुछ दे सके। 'एक देनेवाला' यदि खुद ही अपना विधान भंग कर सके, तभी कुछ पा सकोगे। उसके अलावा कोई उपाय नहीं है।

साधुजी ने हताश कण्ठ से कहा, मैं देनेवाले को कहाँ पा सकूँगा? उससे तो मेरा कभी साक्षात्कार नहीं हुआ।

वृद्ध के मुख पर मृदु हास्य की रेखा फैल गयी। बोले, दर्शन करोगे? साधु, बात नही समझ पाये और विस्फारित नेत्रों से वृद्ध के मुँह की ओर देखते रह गये।

वृद्ध ने जिज्ञासा की-कलकत्ता जा सकोगे? आशा और आनंद से साधु पुलकित हो उठे- हाँ बाबा, जा सकूँगा।

—तब कलकत्ता चले जाओ और इस पते पर जाकर भेंट करो, कहते हुए उन्होंने एक पता दे दिया।

साधुजी ने जिज्ञासा की, यह कौन हैं, बाबा?

—अरे यही तो देने वाला, खुद मालिक है।

—साधु ने विस्मित होकर प्रश्न किया, ये बंगाली बाबू?

—हाँ बेटा, इनका शरीर बंगाली ही है, कहते हुए वृद्ध ने आँखें मूंद कर, हाथ जोड़ कर उनके लिये प्रणाम निवेदित किया।

प्रायः डेढ़ सप्ताह बाद की घटना।

कलकत्ता के डलहौजी स्क्वायर के उत्तरी भाग में, धूप में, प्रायः

तीन बजे उपरोक्त साधुजी, रास्ता खोजते-खोजते, बताये हुए पते पर घर का ठिकाना पा गये, और दुमंजिले पर आकर एक आफिस के दरवान से नाम के विषय में जिज्ञासा की।

साधुजी, सुन्दर साधु वेष में हैं, यह देखते ही दरवान स्टूल छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। प्रत्युत्तर में उसने कहा, हाँ, वही बड़े बावू हैं, भीतर हैं। इसके वाद उसने बड़े बाबू का चेम्बर दिखला दिया।

साधु, सीधा भीतर चेम्वर के गेट के सम्मुख उपस्थित हुए। स्टूल के ऊपर, जो छोकरा वेयरा बैठा था, उसने कुछ प्रश्न किया। किन्तु साधुजी ने संभवतः उसकी बात नहीं सुनी और दरवाजा ठेल कर भीतर चले गये।

शीशे से ढँके विराट् टेबुल के सामने, इसी तरफ मुँह किये बड़े बाबू बैठे थे। टेबुल के दूसरी ओर चार भद्र लोग, दरवाजे की ओर पीठ करके बैठे हुए वातचीत कर रहे थे। बड़ा बाबू की दृष्टि का अनुसरण करते हुए सभी ने इस ओर सिर घुमाया, और एक जटाधारी साधु मूर्त्ति को देखा। उनको यही भान हुआ कि सहायता (भिक्षा) प्राप्त करने वाले साधु, जैसे सभी जगह प्रायः मिलते हैं, उनमें से ही ये एक हैं। किन्तु साधु के नेत्रों को अगर उन्होंने ठीक से देखा होता तो स्वभावतः उनका अनुमान गलत सिद्ध होता।

बड़े बाबू ने बातचीत बन्द करते हुए प्रश्न किया, किसे खोजतेहैं।

—आपसे ही मेरा कुछ कार्य है।

—बैठिये, कहते हुए बड़े बाबू ने एक कुर्सी दी। साधुजी निर्दिष्ट कुर्सी पर शांत भाव से बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे। बड़े बाबू, आगन्तुकों मे बात खतम करने में लग गये, तथा साधुजी सुयोग पाकर बड़े बाबू को ध्यान पूर्वक देखने लगें। बड़े बाबू के शरीर पर कीमती गरद का कुरता था जिसमें दाहिनी ओर बटन के लिये काज कटा हुआ था। शरीर गौर वर्ण तथा आँखों पर काले मोटे फ्रेम का चश्मा, खड़ी नाक। बात करते जा रहे हैं तथा अविराम सिगरेट के

कश खींचते जा रहे हैं। सिगरेट के विषय मे निश्चय ही उन्हें अग्नि होत्री की संज्ञा दी जा सकती है । देखते-देखते साधुजी की आँखें सिकुड़ सी गयी। ऐसे ही बड़े बाबू को एक टक देखते जा रहें हैं।

वीस मिनट बाद, आगन्तुक लोग उठ गये। बड़े बाबू ने जिज्ञासा की, मेरे साथ क्या कार्य है, कहिये ?

साधु जी ने प्रश्न का उत्तर न देकर प्रश्न किया: सिगरेट क्यों पी रहे हैं ?

--ऐसे ही अभ्यास हो गया है।

—अंतर में अग्नि प्रज्वलित रहने पर, बाहर के अग्नि की क्या आवश्यकता है ?

बड़े बाबू ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर पूछा, किस कार्य से आप यहाँ आये हैं, यह तो बताया ही नहीं।

—किंचित एकान्त की आवश्यकता है।

—अच्छा बैठिये।-कह कर उन्होंने कई जरुरी कागजों पर दस्तखत करके घंटी बजाई। बेयरे के आने पर कागज उसके हाथों में देकर उन्होंने कहा, मैनेजर बाबू को बुला दो ।

मैनेजर बाबू के आते ही उन्होंने कहा : मैं जा रहा हूँ । शरीर कुछ अस्वस्थ है, संभवत: आज वापस नहीं आ पाऊँगा।

--अच्छा, कह कर मैनेजर बाबू वाहर चले गये।

बड़े बाबू कुर्सी से उठ खड़े हुए और साधुजी से कहा, बैठिये अभी आ रहा हूँ ।

पाँच मिनट बाद, बाथरुम से हाथ-मुँह धोकर वे अपनी कुर्सी के पास आकर खड़े हुए। दराज खोल कर उन्होंने एक जोड़ा चश्मा डब्बे में डाल कर पाकेट में रखा। पाकेट में हाथ डाल कर देखा कि अभी भी तीन पैकेट सिगरेट मौजूद है। उसके बाद इन्होंने साधुजी से कहा, चलिये।

साधु जी को साथ लेकर बड़े बाबू ने कर्जन पार्क से थोड़ी दूरी

पर टैक्सी छोड़ी, और किराया चुका दिया। एक बार आकाश की ओर देखा, उसके बाद साधुजी के साथ एक क्यारी के किनारे बैठ गये।

वंगाली बाबू ने तुरत साधुजी से जिज्ञासा की, कुछ खाइयेगा ?

--खा तो सकता हूं, परन्तु सभी सामान नहीं खाता।

—छेना ?

--वह चल सकता है। किन्तु यहाँ कहाँ मिलेगा।

इसी समय, मालिश का साज-संजाम लिये, एक मालिश वाला हिन्दुस्तानी छोकरा पास आकर खड़ा हो गया। बोला, सलाम बाबूजी।

बाबूजी ने कहा, अरे ? छेना खरीद कर ला सकोगे ?

--जी हाँ।

—कहाँ से लाओगे ?

—बहू बाजार से।

—तुरत लेकर आओ, समझे ? ट्राम से जाओ, कह कर उन्होंने पाँच रुपये का नोट छोकरे को दिया।

वह रुपया लेकर चला गया। बाबूजी, अभ्यास के अनुसार सिगरेट के कश पर कश खींचते जा रहे हैं। साधु जी से कोई प्रश्न नहीं कर रहे हैं। साधुजी भी चुपचाप हैं।

थोड़ी देर बाद ही छोकरा आकर हाजिर हुआ। उसके हाथों में केले के पत्ते में लिपटा हुआ छेना था।

बाबूजी ने कहा, बहुत जल्दी आये। जल नहीं लाये ?

छोकरा जीभ काट कर दौड़ गया और थोड़ी ही देर में एक शीशे के गिलास में पानी लेकर हाजिर हुआ। बाबूजीकेहाथों में उसने तीन रुपये तथा कुछ खुदरा वापस किया। बाबू ने कहा, यह तुम ले लो।

—नहीं बाबू।

—नहीं बाबू क्यों ? लो।

नहीं बाबू, शौकत को पता चल गया तो मार डालेगा।

शौकत इनका सरदार है।

वह कहाँ है ?

यहीं है। आपको देखते ही उसने मुझे यह कह कर भेज दिया कि जा देख आ, बाबू जी को कुछ आवश्यकता तो नहीं है।

उससे कहना, मैंने लेने को कहा है।

छोकरे ने वैसा ही उत्तर दिया, नहीं बाबू।

शौकत है कैसा ?

वह दीवाना हो गया है, बाबूजी। सलाम कर के छोकरा चला गया।

बाबू जी ने कहा, खाइये।

साधुजी, हाथ धोकर प्रस्तुत हुए परन्तु खाने से पूर्व उन्होने जिज्ञासा की,उसने इतना परिश्रम किया उसे कुछ दिया क्यों नहीं ?

क्या करता, लेना नही चाहता था।

वह नही चाहता था, फिर भी आपको देना तो उचित था।

बाबू जी नीरव होकर साधु जी की ओर देखते ही रह गये। कई सेकेन्ड तक सिगरेट के कश खींचना भी जैसे भूल गये।साधुजी ने चुपचाप भोजन समाप्त किया केले का पत्ता दूर फेंक कर हाथ मूँह धोया और फिर उसी स्थान पर आकर बैठ गये। ग्यास हाथ बढ़ा कर उन्होने थोड़ी दूर मिट्टी पर ही रख दिया।

आसन पर बैठ कर साधुजी ने अब बड़े बाबू के चेहरे की ओर देखा। देखते ही विस्मित हो उठे। बाबू के चेहरे का भाव बिलकुल परिवर्तित हो चुका है, जैसे वे कोई अन्य ही व्यक्ति हों। साधु जी की आँखों में देखते हुए बाबू जी ने गुस्से, में कहा-साला।

सुनते ही साधुजी चौंक पड़े। बात क्या है ?

बड़े बाबू बोलते ही गये, "साला, योगी की परीक्षा करने आया

है । साला, हिमालय के योगी ने भेजा है, उस पर भी तुम्हारा अविश्वास ? सिगरेट क्यों पीते हैं ?, आँख की पलक क्यों गिरती है ?, साला, योगी की परीक्षा करेगा ! करो परीक्षा, ले साला, उठ, –कहते हुए आँख के इशारे से उन्होंने कुछ दिखला दिया !" पास ही एक खूँटा पड़ा था, जो कि युद्ध के बाद, जब मिलिटरी अपना तंबू उठा ले गयी, तभी उन लोगों का एक लोहे का खूँटा छूट गया था !

—ले, अब उठा ।

डाँट खाकर भय से, मंत्रमुग्ध जैसे, साधु जी खूँटा उठा लाये ।

—ले 'आँख, पर मार, देखो पलक गिरती है या नहीं, कह कर उन्होंने अपनी आँख की ओर इंगित गिया ।' साधुजी, भय से आतंकित हो उठे थे, डाँट से चेतना लौटी ।--'ले साला, कहता हूँ,' मार ।

यन्त्रचालित जैसे, साधु जी ने आदेश का पालन किया । खूँटे का सिरा बाबूजी की बायीं आँख पर छुलाते ही वे जोर से डाँट पड़े, साला, तुम्हारे शरीर में जितनी ताकत है, उतने जोर से मार, उसके बाद देख, पलक गिरती है या नहीं ? ले, जोर से धक्का दे । साला, और जोर से--क्या पलक गिरती है ? 'ले साला, अब हाथ देख'---- कह कर उन्होने अपना दाहिना हाथ बढ़ा दिया ।

—क्या नाड़ी है ? ले--नाक के पास हाथ ले आ, देख साला, श्वास है या नहीं ? योगी की परीक्षा करने आया है, साला अहमक । बहुत कम लोगों से ही उनकी भेंट हो पाती है । उन महायोगी ने तुमको भेजा था, फिर भी संदेह ? फिर भी प्रश्न ?--कहते, कहते बाबू जी एकदम चुप हो गये । आखें मुँदी हुई तथा शरीर पत्थर जैसा, स्थिर एवं निस्पन्द ।

जब उन्होने आँखें खोली, देखा साधुजी उनके पैरों पर गिरे हुए हैं । नयनाश्रुओं से ही उन्होने पैर धो डाले हैं । पीठ पर हाथ रख कर उन्होंने सस्नेह स्वर में कहा—अब उठो, बस ।

साधुजी उठ कर बैठ गये। दोनो हाथ जोड़ कर सजल नेत्रों मे केवल देखते ही रह गये । किसी तरह इतना ही कह पाये–कृपा कीजिये ।

—जब आप प्रार्थना कर रहे हैं, तब आशीर्वाद न देना क्या संभव है ? आसन लगाकर बैठिये । हाँ ठीक है । 'नाभि देखूँ'–कह कर दाहिना पैर बढ़ा कर, अंगूठे से, साधुजी की नाभि का स्पर्श किया ।

साधुजी, और उसके बाद किसी अदृश्य को लक्ष्य करके उन्होंने कहा--उसके ऊपर नजर रखना । समाधि ब्राह्म मुहूर्त मे भंग होगी, उस समय हिमालय पर रख आना । संभव है,जगने पर मुझसे मिलने के लिये रोना धोना शुरु कर दे । उस समय बेटा को कह देना--एक वर्ष बाद भेंट होगी ।

सूर्यास्त अभी नहीं हुआ है । बाबू जी उठ पड़े । पूर्वाभ्यास से एक बार आकाश की ओर देखा । पाकेट से सिगरेट निकाल कर सुलगा ली । उसके बाद साधुजी को अकेला छोड़ कर, कर्जन पार्क की ओर चल पड़े । वहाँ से टैक्सी लेकर घर वापस आये ।

—०००—

# नैमिषारण्य

[ श्री अमलेन्दु. दास गुप्त, योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहराय के बाल-बंधु तथा जवानी के दिनों में, राजनीति में अंतरंग सहचर रहे हैं । योगीश्वर के आध्यात्मिक जीवनके के उन्मोचित होने के पश्चात् भी अमलेन्दु बाबू का उनके साथ घनिष्ट संपर्क रहा था । प्राचीन ऋषियों की कथा, याज्ञवल्क्य आश्रम की कथा एव कहानी, अंतरालचारी महासाधकों का अलौकिक जीवन वृत्तान्त भूत-भविष्यत् की कहानियाँ, जिनका किसी ग्रन्थ में उल्लेख नहींहै,ऐसे अनेक तथ्यों का जिन दो-चार व्यक्तियों के समक्ष योगीश्वर उल्लेख करते थे, अमलेन्दु बाबू उनमें से एक थे । योगीश्वर की उन्हीं चर्चाओं से ही अमलेन्दु बाबू के नैमिषारण्य की सृष्टि हुई है । ]

परमगुरु भगवान वेदव्यास को नमस्कार करने के उपरान्त ही आरंभ करूँगा ।

सूत के आनंद पूर्वक आसन ग्रहण करने के उपरान्त नैमिषारण्यवासी ऋषिगण ने अपने-अपने आसन पर स्थान ग्रहण किया ।

ऋषिगण उवाच-'हे सूत उग्रश्रवा,तुम्हारा अपने पिता लोमहर्षण के जैसा ही सार्थक नाम है । तृतीय पितृदेव के पुराण वर्णन की शैली में ऐसा आकर्षण था कि श्रोतागण रोमांचित हो उटते । इसी कारण वे त्रिलोकी में लोमहर्षण के नाम से विख्यात हुए थे । तुम भी पिता की ही भाँति पौराणिकोत्तम के नाम से ही विदित हो, तथा तुम श्रुतियों के महान ज्ञाता हो । अर्थात्, तुम श्रुतिधर हो । इसी कारण, स्वयं

२/६

व्यासदेव ने तुम्हें उग्रश्रवा के नाम से संबोधित किया है ।

सूत ने कहा—"अच्छी प्रशंसा सुन कर सभी संतुष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा, आप सभी सत्य वक्ता हैं, मेरे पितृदेव तथा मेरे संबंध में आपने उत्तम ही नहीं वरन् उपयुक्त वाक्यों का प्रयोग किया है। अब आप सब का मेरे लिये क्या आदेश है, उसे व्यक्त करें जिससे मैं कृतार्थ होऊँ ।"

ऋषिगण ने कहा--"हे मुनिसत्तम सौति, आप मात्र अच्छे वक्ता ही नहीं हैं वरन् रसिक भो है, यह हम लोगों को भली भाँति ज्ञात है । जिस तरह दुर्जन व्यक्ति मीठे और नम्र वाक्यों के वशीभूत हो जाते हैं, उसी तरह महान व्यक्तिगण स्तुति से तुष्ट हो जाते हैं ! महान से, महान वस्तु के-अर्जन का उपाय होता है, महत् वंदना— यह भी हम लोगों ने सुना है।"

सूत ने कहा—"आप लोगों ने ठीक ही सुना है, तथा मैं भी पूर्णतया तुष्ठ हो गया हूँ । अब दया करके अपना आदेश तथा अभिलाषा व्यक्त करें जिससे अधिक समय नष्ट न हो।"

ऋषिगण-"हम सभी वेद, उपनिषद् एवं अनेक अध्यात्म शास्त्रों से अवगत हैं।"

सूत—"आपको अपने ज्ञान की तालिका पेश करने की आवश्यकता नहीं है, कारण आप सर्व शास्त्रों में पारंगत हैं, यह कौन नहीं जानता ?"

ऋषिगण—"आपके पितृव्य तथा आपसे हमने अठारह पुराणों का श्रवण किया है एवं समस्त वेद-पुराण एकत्रित करने पर भी जिसका वजन सबसे भारी है, उस महाभारत का भी इसी नैमिषा-रण्य में बैठकर आपसे श्रवण किया है ।"

सूत ने कहा--"हे ब्रह्मर्षिगण, आप जैसे श्रोता के मिल जाने पर बौड़म भी वाक् मुखर हो उठेगा, इसी कारण पर्वत-जैसा महाभारत भी मेरे जिह्वाग्र पर है। इस बात का स्मरण होने पर भी मुझे

भ्रान्ति का बोध नहीं होता। आदेश देकर देखें।"

ऋषिगण ने कहा,—"हे सूत, व्यास-प्रसाद से आप कृतकृत्य हो चुके हैं। वर्तमान एवं भविष्यत, सभी आप को ज्ञात है। हमने सभी पुराणों का श्रवण कर लिया है, अब आप हमें कुछ नया सुनाने का कष्ट करें। हमारी श्रवणेंद्रियाँ बहुत दिनों से सुनने को आतुर हैं।"

सूत ने कहा--"आप सभी काल-रहस्यवेत्ता होते हुए भी आश्चर्य-जनक अभिलाषा व्यक्त कर रहे हैं। सृष्टि में कुछ नवीन भी घटित होता है, इतना कहने मात्र से ईश्वर की शक्ति पर ही दोषारोपण हो जाता है। उनकी सृष्टि, अतीत, संपूर्ण नहीं थी।, इसमें नवीन सृष्टि करके वे संपूर्णता दान करने की चेष्टा कर रहे हैं, ऐसा अनुचित वचन क्या ईश्वर के संदर्भ में कहा जा सकता है ?"

ऋषियों ने कहा--"हे महाबाहु सूत हम लोगों को अनुचित वाक्य के उच्चारण में सर्वथा असमर्थ ही जानियेगा। काल अखण्ड अवश्य है, परन्तु उसे बोधगम्य होने के लिये भूत-भविष्यत् तथा वर्तमान, तीन कालों की कल्पना की गयी है, तथा इसी कल्पित काल को ही दृष्टि में रखते हुए ही पुराण एवं नवीन विशेष घटनाओं के संबन्ध में उल्लेख किया जाता रहा है। अतएव कुछ नया सुनने की इच्छा करके हम लोगों ने कोई अयुक्तिपूर्ण अभिलाषा नहीं व्यक्त की है।"

सूत ने कहा—"आप लोगों की दृष्टि त्रिकालदर्शी है, उससे कुछ भी छिपा नहीं रहता, यह मैं देख रहा हूँ। आप लोगों ने यथार्थ ही कहा है। जिस तरह नदी का अपना कोई नाम नहीं होता, वरन् तट तथा देश के सान्निध्य से एक ही नदी विभिन्न नाम ग्रहण करती है। नवीन एवं पुरातन के संबन्ध में भी वैसा ही समझेंगे। एक ही घटना काल और स्थान के संदर्भ में उसी तरह नवीन और पुरातन कह कर जानी जाती है। कौन सी नई कथा आप लोग सुनना चाहते हैं ?"

ऋषिगण ने कहा—"हे सूत, इस विषय में हम लोग आपको परामर्ष देने में असमर्थ हैं, कारण आप वयस में हम सब से बड़े हैं।"

सूत ने कहा—"मैंने ठीक से आपका अभिप्राय नहीं समझा। मैं किस तरह वयस में ज्येष्ठ हुआ समझा कर कहें"।

ऋषिगण—"उम्र में बड़े को ही ज्येष्ठ कहा जाता है, यही प्रचलित गणना है। दूसरे तरह की भी गणना होती है, ज्ञान--वृद्ध होने पर भी उसे ज्येष्ठ कहा जाता है"।

सूत--"आपके वचन से मुझे परम संतोष एवं तृप्ति प्राप्त हो रही है।"

ऋषिगण—"हे सूत, एक और विवेचना करके आप देखें। जिस तरह पहले जन्म ग्रहण करने वाले को ज्येष्ठ कहा जाता है, उसी तरह बाद में मृत्यु को प्राप्त होने पर भी उसे क्यों वृद्ध कहा जाता है।"

सूत—"अहा, इसी को यथार्थ गणित विज्ञान कहा जाता है। कनिष्ठ भी जिस वयस में ज्येष्ठ से ऊपर जा सकता है, इस रहस्य से आप लोग ही अवगत हैं। इसी कारण अनेक लोग कह गये हैं कि धरित्री की सर्वकनिष्ठ संतान होकर भी मनुष्य एक तरह से उसकी ज्येष्ठ सन्तान है"।

ऋषिगण—"देखें,हम लोग द्वापर में ही आकर रुक गये हैं, तथा हम लोगों के उपर काल की यवनिका आ पड़ी है। परन्तु हे सूत, आप की गति अबाध है। आप कलि पर्यन्त आगे जाँयगे, काल के साथ आपका सम-भाव है। इस दृष्टिकोण से भी आपको ज्येष्ठ कहना उचित प्रतीत होता है।"

सूत—"इस तरह दलील देने पर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?"

ऋषिगण—"इसीलिये हम आपसे नवीन कथा सुनने की आशा रखते हैं। जो अतीत है,वही पुराण है एवं जो वर्तमान है, वही नवीन है। उसी नवीन एवं अश्चर्यजनक कथा का आज हम लोगों को आस्वादन कराइये।"

सूत—"फिर आपलोगों ने नूतन के साथ, आश्चर्यजनक संबन्ध कैसे बना डाला।"

ऋषिगण--"मात्र नूतन कथा में पुराण के पुनरावृत्ति की संभावना रहती है, उसी त्रुटि के संशोधन के निमित्त ही, हम आश्चर्यजनक कथा सुनने की प्रत्याशा करते हैं । हे सूत, महाभाग, आप चिरंजीव एवं सुखीहों । आपकी जैसी अभिरुचि हो, वैसी ही कथा कहने का कष्ट करें। हम श्रवण करने को प्रस्तुत हैं ।

सूत ने कहा—"आप लोगों ने मुझे आश्वस्त कर दिया। वस्तुतः यदि वक्ता को स्वाधीनता नहीं रहती तो वाक्य विकृत एवं प्राण-हीन शब्द-समष्टि मात्र रह जाते हैं ।—परन्तु इस आश्चर्यजनक कथा पर तो लोग विश्वास भी नहीं करेंगे।"

ऋषिगण ने कहा—"आश्चर्यजनक कथा कहें परन्तु असत्य न कहें, आस्तिक व्यक्ति अवश्य विश्वास करेंगे। कारण, सत्य बुद्धि का व्यापार नहीं है, वह विश्वास का विषय है। सूत, मनुष्य की बुद्धि मनुष्य के साधारण श्वास द्वारा धृत है, एवं विश्वास एक असाधारण गंभीरतम श्वास द्वारा धृत है। विशेष श्वास, अर्थात् विश्वास। आप यह भी जान लें, कि जन्मान्तर की सुकृति पर ही विश्वास लेकर मनुष्य जन्म ग्रहण करता है।"

सूत—"आप सत्य कह रहे हैं । मात्र अतीन्द्रिय तत्व अथवा सत्य के ही क्षेत्र में नहीं, वस्तुतः इन्द्रिय ग्राहय प्रतीति के लिये भी विश्वास ही भित्ति है। वचन देता हूँ, सत्य ही कहूँगा एवं आश्चर्य-जनक कथा कहूँगा, और मिथ्या कदापि नहीं बोलूँगा।"

ऋषिगण–"हे सूत, फिर आप आरंभ करें। हम व्यग्र हो रहे हैं।"

सूत—"आप लोग अधीरता पूर्वक अपेक्षा कर रहे हैं, परन्तु कहाँ से आरंभ करूँ, यह समझ नहीं पा रहा हूँ। आप लोग, क्या कथा का सूत्र पकड़ा देने की कृपा करेंगे ?"

ऋषिगण—"तथास्तु । द्वैपायन वेद-व्यास अमर हैं, यही हम

लोगों ने सुना है। कलि-काल में उनकी कीर्त्ति के विषय में आप कुछ सुनाने का कष्ट करें। व्रहमविद् ऋषिगण, महत् चरित्र की चर्चा को धर्म एवं मोक्ष के द्वार के रुप में प्रशंसा कर गये हैं।"

सूत—"आप लोगों ने मुझे विपत्ति में डाल दिया। कलि के पूर्ण प्रकाश के साथ ही सद्गुरु भगवान वेद व्यास ने अपने को जन साधारण की दृष्टि से स्वतः ही ओझल कर रखा है। उनके संबन्ध में कोई संवाद जन साधारण में प्रकाशित करुँ, यह उनका अभिप्राय नहीं है।"

ऋषिगण—"विस्त्रित रुप में न सही, संक्षेप में ही कुछ कहने का कष्ट करें।"

सूत—"आप लोग भरोसा दे रहे हैं, इसी कारण, मुझे कहने का साहस हो रहा है। यह ध्यान रखेंगे कि अंततः मैं पथ भ्रष्ट न हो जाऊँ।"

ऋषिगण—"हे सूत, आप व्यर्थ ही दुश्चिंता में न पड़ें। हम आपके पक्ष का सर्वदा ही समर्थन करेंगे।"

सूत—"ऐसा करना ही अच्छा होगा। हे ऋषिगण, आप श्रवण करें। इस बंग देश में ही भगवान वेद व्यास का लीला-क्षेत्र है।"

कुलपति शौनिक ने कहा—"हे सूत,आप हम लोगों को विभ्रान्त कर रहे हैं। इससे पूर्व आपने कहा है कि वेद व्यास ने अपने को जन-साधारण से गोपन करके रक्खा है।"

सूत—"क्यों, सत्य ही तो कह रहा हूँ।

शौनिक ने कहा--"परन्तु आप कह रहे हो कि इस बार वेद व्यास का लीला-क्षेत्र बंग देश है—दोनों उक्तियाँ हम लोगों को सर्वथा असंगत लगती है।"

सूत—"दिखला देने से ही देख सकेंगे। यमुना द्वीप में, सत्यवती के गर्भ से,जिस शरीर को लेकर व्यास देव निर्गत हुए थे, उस शरीर को उन्होंने अदृश्य रक्खा है। वस्तुतः उस शरीरका उन्होंने व्यवहार

ही नहीं किया।"

ऋषिगण ने प्रश्न किया—"फिर वह शरीर क्या हुआ ? क्या उन्होंने उस शरीर का परित्याग कर दिया है ?"

सूत—"नहीं,जो शरीर अमर है, उसे इच्छा मात्र से त्याग करने की सुविधा नहीं है । इसके अलावा, इसकी आवश्यकता भी नहीं है। पांच सहस्त्र वर्षों से वह शरीर हिमालय के दुर्गम तुषार-मंडित शिखरों में समाधिमग्न रहा है। देखने पर भ्रम हो जायगा, क्योंकि वह तुषार निर्मित शरीर जैसा ही लगेगा।"

ऋषिगण—"महायोगी, भगवान वेद व्यास के लिये सब कुछ संभव है। हे सूत, वे योग-शक्ति के बल से देह धारण करके लीला करते रहते हैं, यह हम लोग भली भाँति समझ गये हैं।"

सूत—"आप कुछ भी नहीं समझ पाये हैं, और जो समझे भी हैं, वह मिथ्या है। व्यास देव, एक या बहुत देहों का निर्माण करके लीला नहीं करते, तथा गर्भ से भी जन्म ग्रहण नहीं करते।"

ऋषिगण—"फिर वह कार्य-देह को किस प्रकार प्राप्त करते हैं ? हम अतिशय कौतूहली हो गये हैं। आप इस रहस्य को समझा कर कहें।"

सूत—"आप निरर्थक भ्रम में पड़े हुए हैं । गर्भ से पैदा होना और गर्भ-जात देह ग्रहण करना क्या एक ही बात है ? जरा सोच कर तो देखें !"

ऋषिगण—"अब हम लोग समझ गये हैं।"

सूत—क्या समझे हैं ?"

ऋषिगण—हमें ज्ञात हो गया है कि व्यास देव का जन्म संभव नहीं है, इसी कारण वे गर्भ से जात नहीं होते।"

सूत—"साधु ! उसके बाद ?"

ऋषिगण—"वे योग बल से देह की सृष्टि नहीं करते, वरन् किसी मनुष्य की आयु शेष हो जाने पर, उसी शरीर में प्रवेश

कर जाते, हैं, और उसी को अपने देह-रुप में ग्रहण करते हैं ।''

सूत—''साधु ! साधु ! थोड़ा सा ध्यान देने पर ही आप सब कुछ समझने को सक्षम हैं, तथा आप जल्दी ही विभ्रान्त भी हो जाते हैं। अहो ! विधाता की कैसी अपूर्व माया है ।''

ऋषिगण—''हे सूत आपने अभी कहा है कि पाँच हजार वर्ष हुए, वेद व्यास ने अपने शरीर को हिमगिरि के शिखरों पर समाधि-मग्न रख छोड़ा है । इस लम्बी अवधि में अब तक उन्होंने कितने शरीर धारण किये हैं ?''

सूत—''वर्त्तमान समय में वे अपने बारहवें शरीर से संसार में क्रीड़ा कर रहे हैं । इससे पूर्व, एकादश शरीर गत हो चुके हैं। वर्त्त-मान शरीर में वे बंगाली ब्राह्मण हैं ।''

ऋषिगण—''एक-एक शरीर में वे कितने समय तक निवास करते हैं ?''

सूत—''इसकी कोई निश्चित अवधि नहीं है। किसी देह में सात सौ वर्ष तो किसी में सौ वर्ष, किसी में और भी कम इस प्रकार उन्हने अबतक एकादश शरीर व्यवहार में लाए हैं । इस बार के शरीर में एक विशेष वैशिष्ठ्य है ।''

ऋषिगण—''हे सूत, आपके वचन हमारी श्रवण पिपासा बढ़ाते चले जा रहे हैं। उसे शीघ्र निवृत्त करें।''

सूत—''यह शरीर भी जन-साधारण के लिये अगोचर ही है । केवल ब्रह्मविद एवं सिद्ध व्यक्तिगण ही इस शरीर का दर्शन लाभ करने की सामर्थ्य रखते हैं ! तथा जिन पर करुणा करके वे दर्शन देना चाहें, वे भी उन्हें देख सकते हैं ।''

ऋषिगण—''उनके इससे पूर्व के जितने भी शरीर थे, क्या वे सभी को दृष्टिगोचर होते थे ?''

सूत—''साधारणतः दिखायी पड़ते थे। नवम देह में, दीर्घ काल तक उन्होंने निर्जन में वास किया है। मात्र पाँच व्यक्तियों के साथ

ही उन्होंने वार्तालाप किया है । दशम देह, उन्होंने प्रायः सात सौ वर्षों तक धारण किया था एवं बहुत से लोगों को उनके दर्शन का लाभ मिला था। परन्तु एकमात्र ब्रह्मज्ञानी ही उनके यथार्थ परिचय से अवगत थे। उनके अलावा अन्य लोग, उन्हें मात्र एक सिद्ध पुरुष के रुप में ही जानते थे। ग्यारहवाँ शरीर एक सक्रिय राजकुमार का था। मृत देह को श्मशान में ले जाने के बाद उन्होने उसमें प्रवेश किया एवं चेतना लाभ करते ही, यह कहते हुए कि मैं संसार त्याग करके सन्यासी हुआ, श्मशान से ही परिजनों से विदा ले ली ।"

ऋषिगण—"हे सूत, हम लोगों की किसी भी तरत तृप्ति नहींहो पा रही है, जितना भी सुनते जा रहें हैं, पिपासा की वृद्धि ही होती जा रही है।"

सूत—"यह मुझे ज्ञात है। कामना का स्वभाव ही ऐसा है । वह ईंधन से शांत न होकर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है । यह ध्यान रखेंगे कि सृष्टि में कोई भी कामना, काम्यवस्तु की प्राप्ति से शांत एवं निःशेष नहीं होती; मात्र एक कामना को छोड़कर।"

ऋषिगण—"वह विशेष कामना क्या है, हम लोग जानना चाहते हैं।"

सूत–"वह है ब्रहम–कामना। ब्रहम प्राप्ति मे, मात्र वही कामना ही नहीं, वरन् जीवन की समस्त कामनाएँ शांत हो जाती हैं। इसी कारण, अनेक महर्षि ब्रह्म--कामना को कामना के अंतर्गत नहीं मानते।"

ऋषिगण—"कृपया, इस विषय में कुछ अधिक विस्तार से कहने का कष्ट करें।"

सूत—"एक बार महर्षि दुर्वासा के प्रश्न के उत्तर में भगवान याज्ञवल्क्य ने कहा था कि ज्ञानी की ब्रहमप्रोति,ब्रहम-कौतुक के अंत में ब्रहमप्रीति में रुपान्तरित हो जाती है। महर्षि दुर्वासा ने प्रश्न किया, ब्रहम-प्रीति किसे कहते हैं ? याज्ञवल्क्य ने कहा,अच्छा-बुरा सभी कुछ

के साथ अपने को समर्पण कर देना ही ब्रह्म-प्रीति है । जिस तरह नदी स्रोत धीरे-धीरे तट को काटकर किनारे पर खड़े वृक्ष को नदी के गर्भ में आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार यह ब्रह्मप्रीति, समाश्रित सभी कामनाओं का उन्मूलन कर के उसी स्रोत में मिला कर निश्चिह्न कर देता है ।"

ऋषिगण—"हे सूत, भगवान याज्ञवल्क्य, ऋषि समाज में, ब्रह्म के मूर्त्त प्रकाश के रुप में आराधित हैं । वेद-उपनिषद्-पुराणों में उनके जो उपदेश सुरक्षित हैं, उन सभी से हम लोग पूर्ण रुप से अवगत हैं । परन्तु आपने आज जो कुछ भी कहा, उसका इससे पूर्व हम लोगों ने कभीं श्रवण नहीं किया ।"

सूत—"कैसे कर सकेंगे ? भगवान याज्ञवल्क्य अपने आश्रम में, शिष्यों तथा समागत ऋषिगणों को जो सारे उपदेश प्रदान करते थे, वे तो वेद-उपनिषद् इत्यादि में सुरक्षित नहीं हैं ।"

ऋषिगण—"फिर क्या वे उपदेश बिलकुल लुप्त हो गये हैं ?"

सूत–"नहीं,वे लुप्त नहीं हुए, कारण वे लुप्त हो सकने वाले ही नहीं हैं। ब्रह्मर्षिगण उस ज्ञान को निरंतर लुप्त रुप से रक्षा करते हुए चले आ रहे हैं। सद्गुरु भगवान वेद व्यास, महर्षि याज्ञवल्क्य के अपने हाथों से लिखित ब्रह्म ग्रन्थ की, अत्यन्त यत्नपूर्वक आज भी रक्षा कर रहे हैं । ब्रह्मविदगणों में भी श्रेष्ठतम व्यक्तियों को क्वचित्-कदाचित इस ग्रन्थ के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है ।"

ऋषिगण—"हे सूत, आप हम लोगों को यथार्थ रुप में नई वार्ता का श्रवण करा रहे हैं। अब आप जो चर्चा कर रहे थे, उसे आगे बढ़ावें ।"

सूत—"क्या कह रहा था ? आप लोगों के प्रश्नों की झड़ी में कहानी को आगे बढ़ा सकना किसके लिये संभव है ? कृपया स्मरण दिला देने का कष्ट करेंगे क्या ?"

ऋषिगण– "हम लोग भगवान वेद-व्यास के संबन्ध में ही आपसे

प्रश्न कर रहे थे।"

सूत—"कृपा करके, फिर प्रश्न आरंभ करें।"

ऋषिगण ने कहा—"हे सूत, आप कह चुके हैं कि इस बार बंग भूमि ही, भगवान वेद-व्यास का लीला क्षेत्र है, और उन्होंने बंगाली शरीर धारण किया है!"

सूत—"क्यों, इसमें दोष क्या हो गया है? सत्य बात ही तो कह रहा हूँ।"

ऋषिगण--"दोष की बात नहीं हो रही है। हम लोग यह जानना चाहते हैं कि उन्होंने बंगाली शरीर ग्रहण किया क्यों?

सूत—"क्यों, क्या बंगाली शरीर अस्पृश्य है? अगर वे मद्रासी, गुजराती, पंजाबी अथवा उड़िया शरीर ग्रहण करते तो क्या आप लोग यही प्रश्न कर पाते?"

ऋषिगण—"यह बात तो आप ही बता सकते हैं। हम लोग केवल जानना चाहते थे कि बंगभूमि के इस सौभाग्य का कोई विशेष कारण है क्या?"

सूत—"निश्चित रुप से है, नहीं तो व्यास देव इस भूमि का निर्वाचन ही क्यों करते? सौभाग्य यों ही नहीं आ जाता। सौभाग्य की पृष्ठभूमि में पहले की साधना रहती है। बंगभूमि में ऐसी ही दीर्घदिनों की साधना थी, यह आप लोग निश्चित रुप से जानियेगा।"

ऋषिगण—"हे सूत, बंगभूमि के संबन्ध में हम लोगों को, कृपया, कुछ अधिक विस्तार से बताने का कष्ट करें।"

सूत—"अच्छा, थोड़ा ही बताने की कृपा करें।"

सूत—"आप, लोग जानते हैं कि भारत-भूमि को देव-भूमि के नाम से पुकारा जाता है। इस देव भूमि का शीर्ष है हिमगिरि का शुभ्र तुषार-किरीट, उसका पाद-पीठ स्थापित है नील-सिंधु पद्म में। बंग भूमि, अपनी जननी के छोटे संस्करण के रुप में है। जननी की ही तरह, उसके सिर पर भी हिमालय का रजत् किरीट है। उसके

भी पदतल में नित्य आन्दोलित नील समुद्र है। वह जननी की पूर्ण प्रतिकृति अथवा प्रतिच्छवि है। यह कन्या होने का गौरव, क्या भारतवर्ष के किसी अन्य प्रदेश के भाग्य में है ? आप सर्वज्ञ हैं, आप ही बतावें ?"

ऋषिगण—"हे सूत, आप सत्य ही कह रहे हैं। इस विचार से तो बंगाल ही देवभूमि भारतभूमि की गोद में एक मात्र देव-कन्या है ।"

सूत—"गंगा का नाम तो आप जानते ही हैं, जिसे आप ब्रह्म-वारि के नाम से पुकारते हैं। वही गंगा, इस भूमि को पूत-पवित्र करके सागर में मिल जाती है। कपिलदेव को, जिनको आप निखिल भास्वर-ज्योति,कपिल महातापस के नाम से वंदना करते हैं, वे आज भी सागर-संगम पर अपने आश्रम में निवास करते हैं ।"

ऋषिगण—"क्या वे किसी विशेष उद्देश्य के साधन हेतु वहाँ निवास कर रहे हैं ?"

सूत—"आप ठीक ही समझ रहे हैं, इसलिये तो आप लोगों के समक्ष कथा कहने में भी बड़ा आनन्द मिलता है । वे जल तथा स्थल के भार-साम्य की रक्षा कर रहे हैं। वे मात्र बंगभूमि का भूभार ही नहीं वहन कर रहे हैं, वरन् उक्त क्षेत्र के वायुमण्डल की समता संपादन करते हुए अपेक्षा कर रहें हैं ।"

ऋषिगण—"आपकी बात जितनी ही अधिक हम लोग सुनते हैं, उतना ही हम लोगों का कौतूहल बढ़ता जाता है। हे सूत, कपिल-देव किसकी अपेक्षा कर रहे हैं, यह तो आपने बताया ही नहीं ?"

सूत—"कृपया धैर्य धारण करें। जब मैंने कहना आरंभ ही कर दिया है, तो सारी बातें बताऊँगा, कुछ छोड़ूँगा नहीं । शिवभूमि कैलाश की गोद में मानसरोवर ( कृपया 'मानस' शब्द पर ध्यान देंगे) से सिंधु, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र, कैलास के हृदय से उत्सरित तीन कल्याण धाराएँ मर्त्यलोक की माटी पर अवतरित हो रही हैं । इनमें से गंगा और ब्रह्मपुत्र, ये दो धारायें, बंगाल की माटी पर

आकर मिलती हैं। इसकी पृष्ठभूमि में विधाता का जो अभिप्राय अथवा मानस गूढ़ एवं गोपन रूप में रखा हुआ है, उसी का उद्घाटन-अपेक्षा, महर्षि कपिलदेव कर रहे हैं । ध्यान रखेंगे, गंगा और सिंधु का मिलन नहीं हुआ। गंगा एवं ब्रह्मपुत्र का मिलन, यह है शिव-शक्ति का मिलन। कैलाश में यह नित्य मिलन है । सृष्टि में, इस भूमि में वही मिलन विशेष उद्देश्य एवं अभिप्राय हेतु संघटित किया गया है। इसी कारण बंगभूमि को शिव-भूमि के नाम से भी संबोधित किया जाता है। मर्त्य-लोक की माटी पर यह कैलास है। आप लोगों की जिज्ञासा का उत्तर मैंने संक्षेप में दे दिया।"

ऋषिगण—"हे सूत, हम लोगों की श्रवण पिपासा अभी भी शांत होने का नाम नहीं ले रही है बंग-भूमि के संबन्ध में आप कुछ और कहें, भले ही संक्षेप में ही हो ।"

सूत—"संक्षेप में ही तो कहता हूँ, परन्तु आप ही लोग प्रश्न करके उसे विस्तृत बना देते हैं । सुने, बंग–भूमि के इतिहास की धारा लुप्त हो गयी है, जिस तरह नदी चलते-चलते मरु-भूमि तथा बालू में आत्मगोपन कर डालती है। पंडित गण गवेषणा करते रहे हैं, परन्तु इस भूमि के वास्तविक अतीत के एक अंश का भी उद्घाटन नहीं कर पाये हैं। उन्हें भी दोष देना उचित नहीं है । स्वयं विधाता ने ही अपने हाथों इतिहास के सारे चिह्नों को लुप्त कर रखा है।

ऋषिगण—"हे सूत, थोड़ा समझा कर कहने की कृपा करें। हम लोग आधुनिक नहीं हैं, इसे आप सर्वथा भूल न जाँय ।"

सूत–"तीन-तीन बार इस भूमि को जल प्लावित एवं मग्न करके हिमालय की तलहटी तक, समुद्र अपनी सीमा विस्तार कर चुका है। अंतिम बार, यह भूमि, तीन सौ वर्षो तक समुद्र जल में डूबी हुई थी । यदि आप थोड़ी साधारण बुद्धि का प्रयोग करें तो आप भी एक विशेष बात देख सकेंगे।"

ऋषिगण—"हे सूत, आप तो जानते ही हैं कि हम लोग, साधारण बुद्धि का बहुत पहले ही त्याग कर चुके हैं, अब केवल बोध-मात्र में ही हम लोगों की स्थिति है।"

सूत—"यह मुझे ज्ञात है, आप 'हैं' भी और "नहीं" भी हैं। आप लोगों को संबोधित करते हुए आधुनिक लोगों के संबन्ध में कहने लग गया था।"

ऋषिगण—"आप क्या कहने लग गये थे।"

सूत—"भूल ही गया। आप लोगों के प्रश्नों की झड़ी में बात का सिलसिला स्मरण रखना भी एक कठिन बात है। कह रहा था कि इन लोगों की दृष्टि में यह साधारण सी बात क्यों नहीं आती कि भारतवर्ष जैसे विशाल देश में एकमात्र बंग-देश में ही क्यों कोयले की खाने दृष्टि गोचर होती हैं ?"

ऋषिगण—"आप किस तरफ इशारा करना चाह रहे हैं ?"

सूत—"इशारा नहीं, मैं सीधा कह रहा हूँ कि पंडितगण, (आप लोगों को नहीं, आधुनिक लोगों को कहता हूँ) आप थोड़ा हिसाब लगाकर भी देख सकते हैं कि कई हजार वर्ष पूर्व, यहाँ का विशाल वन क्षेत्र भूगर्भ मे प्रविष्ठ हो गया था, तथा इस भूमि को अधिक प्राचीन नहीं तो हिमालय का सम-वयसी कह सकने में कोई बाधा है क्या ? आप लोग तो स्वयं त्रिकालज्ञ हैं, आप के भी युग से बहुत बहुत पहले, एक बार आप लोग ही अपनी प्रज्ञा दृष्टि का प्रेषण करके देखने का कष्ट करें। आप क्या यह नहीं देख रहे हैं कि मात्र विस्तृत वन ही नहीं, वरन् अगणित ऋषियों के तपोवन को यह भूमि धारण किये हुए हैं ? एक बार भी इनकी साधारण बुद्धि में यह बात क्यों नहीं आती कि इस क्षेत्र में पहाड़ न होते हुए भी, क्यों तथा किस कारण से इतने पत्थर बिखरे पड़े हैं ?"

ऋषिगण—"हे सुवक्ता सौति, आपके वचन हम लोगों की चेतना में, अतीत के बंगाल का जो चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं, इससे हमारा

सारा शरीर रोमांचित हो उठता है । हे सूत, आप रुकें नहीं, कहते चलें ।"

सूत—"आप लोग जानते हैं कि विष्णु चक्र से सती देह खंडित हुआ था । उसका आधे से भी अधिक अंश, इसी भूमि पर गिरा था; कारण, वास्तविक रुप में यही तो शिव भूमि है ! उन दिनों वंगाल का मानचित्र कैसा था, क्या आप लोग जानते हैं। ? मंगल-घट के ऊपर एक पूर्ण आम्रपल्लव स्थापित करने से जो चित्र बनता है, वैसा ही था, उन दिनो की बंगभूमि का मानचित्र ।"

ऋषिगण—"हे सूत, हम लोगों ने सुना है कि विष्णु से प्रह्लाद ने मनोमय भूमि के लिये प्रार्थना की थी । उस समय नारायण ने कहा था कि वंगाल के अलावा मनोमय भूमि अन्यत्र कहीं नहीं पा सकोगे । इसी कारण, अपने निवास हेतु, प्रहलाद ने बंगाल को ही चुना था। उन्होंने यहीं निवास किया और इस स्थान का नाम पड़ा, बैकुण्ठपुर। यह स्थान कहाँ है, क्या आप बता सकते हैं ?"

सूत—"अधुना, जिसको जलपाईगुड़ि जिला कहा जाता है, प्रह्-लाद की आवास-भूमि, उसी जिले में अवस्थित है । अतीत काल में, इस बंग-भूमि का नाम था, ब्रह्मीपुर । ऋषिगण तो अपने ब्रह्म को लेकर वन-पर्वत वाले निर्जन प्रान्त में चले गये, और इस ब्राह्मीपुर के महाब्रह्म ज्ञानी गण थे, बिलकुल गृही एवं कर्मी साधक। उस काल में संख्यातीत जनकों ने इस भूमि पर जन्म ग्रहण किया था। यह ब्राह्मीपुर, योग एवं तंत्र का शीर्ष-स्थान एवं पीठभूमि था। इसी ब्राह्मीपुर के एक बंगाली राजा ने पूर्व देश, ब्रह्म देश का विजय किया था । ब्रह्मीपुरी राजधानी थी, और वह उसी द्वारा शासित देश था, इसलिये नाम पड़ा ब्रह्म-देश । उसके बाद काल-क्रम से, एक भयंकर भूकंप के कारण, ब्रह्मदेश, अपनी राजधानी ब्रह्मपुरी से विच्छिन्न हो गया, तथा दोनों भूभागों के मध्य निबिड़ अरण्य एवं पर्वतों का विस्तृत व्यवधान, प्राचीर के रुप मे खड़ा हो

गया। आप लोगों से आधुनिक लोगों की चर्चा मैंने कुछ देर पहले की थी, आशा है आप लोग भूले नहीं होंगे !"

ऋषिगण–"हम भूले नहीं हैं, हमें अच्छी तरह उसका स्मरण है।"

सूत—"वे इतिहास के छिन्न सूत्र का संधान नहीं पा रहे हैं। यदि वे आज भी खोज करें तो भूमि गर्भ में खुदाई करने पर देख सकेंगे कि मालदह से ब्रह्मदेश तक एक प्रशस्त, दीर्घ राज-पथ पूर्ववत् वैसे ही विद्यमान है। यदि चट्टोग्राम के पार्वत्य क्षेत्र में वे खनन करें, तो अतीत के इतिहास का चिह्न उन्हें वहाँ मिल जायगा। वे देख सकेंगे कि भूगर्भ में, आज भी, अट्टालिकाओं की श्रेणी विद्यमान है। इस शिव-भूमि के इतिहास का कुछ अंश उद्घाटित होगा या नहीं, यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करता है। उनकी इच्छा हो जाने के कारण ही, उनकी लीलाभूमि–वृन्दावन का इसी युग के एक बंगाली ने अविष्कार किया था। चैतन्यदेव के न आने पर बृन्दावन, आज भी, धूल के नीचे अनाविष्कृत पड़ा रह जाता। शिव-भमि, बंगाल के आज की ही स्थिति को देखें। समग्र भारत में कहीं भी गाँव-गांव में इस तरह सन्ध्यारति एवं शंख-घंटा ध्वनि सुनने को नहीं मिलेगी। ब्राह्मीपुर के अतीत का कुछ अंश, आज भी, उसी तरह बंगालियों के जीवन एवं गृहस्थी में अक्षुण्ण बना हुआ है। शिव ही इस भूमि के आराध्य थे। घर-घर में कुमारियों की शिव-पूजा, बंगाल का ही वैशिष्ठ्य है। शिव-शासित, शिव-पालित एवं शिव-रक्षित, इस भूमि में जो बंगाली जाति निवास करती थी, उसके चिह्न आज के बंगालियों के शरीर में ढूढ़ पाना कठिन है। ऐसा भी नहीं है कि वे चिह्न एकदम ही लुप्प हो गये हैं। बंगालियों का वक्षस्थल देखने पर आज भी कुछ वैशिष्ठ्य दृष्टिगोचर हो जाँयगें। ऐसा वक्षस्थल क्या कहीं भी देखने को मिल सकता है ? आप लोग तो जानते ही हैं कि वक्ष ही जीव और उसका स्थिति-स्थान है। यही वक्ष स्नेह, प्रेम, दया, माया, शौर्य, वीर्य तेज इत्यादिक का उद्गम स्थल है। हृदय में 'वे'

हृदि आयः हैं, इसीलिये हृदय नाम पड़ा है। यही हृदय अथवा वक्ष, जीव की सारी शक्ति एवं ऐश्वर्य का एक मात्र भांडार है। उन दिनों के बंगाली का वक्ष-पट ही भारत वर्ष की सभ्यता का प्राण-केंद्र था। वर्त्तमान युग के बंगाली वक्ष पर अतीत के उसी वक्ष-पट के कुछ चिह्न विशेष आज भी ध्यान देने पर दिखायी पड़ जाँयगें।"

ऋषिगण—"हे मुनि प्रवर सौति, आप ने हम लोगों द्वारा अभिलषित विषय का वर्णन किया है। बंगभूमि, क्यों इस वार भगवान वेद व्यास के लीला क्षेत्र के रुप में निर्वाचित हुआ, इस तथ्य से हम लोग अवगत हो गये हैं, तथा इससे हम लोगों को असाधारण तृप्ति हुई है। इसके उपरान्त उनके लीला-देह धारण के संवन्ध में कुछ सुनाने का कष्ट करें। इस भक्ति-मुक्ति प्रद मंगल-कथा को सुनने का हमारा विशेष आग्रह है।"

सूत—"हे द्विजोत्तमगण, आप लोग सत्य-सन्ध एवं ब्रह्म ध्यान निष्ठ हैं। आपके समक्ष मैंने बहुत सी पुराण कथाएँ, सिद्धाश्रम एवं इसी नैमिषारण्य में, अतीत काल में, कहीं है। परन्तु इस वार, पुराण-कथा के स्थान पर नवीन-कथा कहने के कारण, मैं बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूँ।"

ऋषिगण—"कैसी विपत्ति में पड़ गये हैं, उसे स्पष्ट रुप से कहने का कष्ट करें। आपको विपत्ति से मुक्त करने की हम यथा-साध्य चेष्टा करेंगे। यह वचन तो हम लोगों ने, कथा आरंभ होने से पूर्व ही, आपको दे दिया है।"

सूत—"आप लोगों की थोड़ी ही कृपा से, विपत्ति से मुक्ति पा जाऊँगा। नयी कथा का वर्णन करने में मुझे आज के युग के अनुरुप भाषा-भंगी का आश्रय लेना पड़ेगा। परन्तु आप प्राचीन ऋषि हैं, एसीलिये डर लगता है कि आपको आधुनिक शब्दावली को समझने में कदाचित कठिनाई न हो जाय।"

ऋषिगण—"आप व्यर्थ की चिता में पड़े। बिना किसी संकोच

के आप कहते चले जाँय । श्रोताओं की रुचि, बुद्धि, बोध इत्यादि की उपेक्षा करते हुए आप नवीन कथा कहते चले जाँय ।"

सूत ने कहा—"तथास्तु ! फिर सुनें—आज से लगभग पचास साल पूर्व की बात है । एक धनी बंगाली ब्राह्मण जमीदार, उश्री के के पहाड़ पर, सपरिवार भ्रमण हेतु आये हुए हैं । दास-दासी एवं दरवानों को मिलाकर एक काफी बड़ी फौज ही साथ में है । एक रमणीक स्थान चुनकर जमीदार का तम्बू लगा दिया गया है, और बहुत हो-हल्ला मचा हुआ है । स्त्रियों के स्नान एवं शौचादि की व्यवस्था करना अभी शेष है । जमीदार ने आदेश दिया, "जाओ, उस स्थान को अच्छी तरह घेर तो डालो," कहते हुए उन्होंने उँगली के इशारे से सकेत दिया । आदेशानुसार, कई व्यक्ति आगे बढ़े । वहाँ पहुँच कर देखा कि उस स्थान पर एक विशाल शरीर वाला साधु बैठा हुआ है, मानो मैनाक की छोटी प्रतिमूर्ति हों । साधु के विशाल शरीर के दर्शन के पश्चात्, जमीदार के आदमियों में भगदड़ मच गयी । हे ब्रह्मर्षिगण, आप निश्चित रुप से अनुमान कर रहे होंगे कि यह साधु कौन था ।"

ऋषिगण,—"नहीं, हम लोग कुछ भी अनुमान नहीं कर पा रहे हैं । आपके प्रश्न से ऐसा लगता है, कि वे स्वयं व्यास देव ही थे ।"

सूत—"आप सत्य ही कह रहे हैं । वे व्यास देव ही थे, और यह उनका ग्यारहवाँ शरीर था । इस ग्यारहवें शरीर में उनका देह ही नहीं, वरन् आचरण भी अत्यन्त उग्र था तथा उनके दर्शन से सबके हृदय में भय का सचार होने लगता, इस विशेष बात को ध्यान में रखेंगे । जमीदार के प्रधान दरवान ने आगे बढ़ कर, हाथ जोड़ कर निवेदन किया "महाराज"। महाराज के आँखें खोल कर देखते ही दरवान की अवस्था शोचनीय हो उठी । अत्यन्त चेष्टा एवं साहस का संचय करने के उपरान्त, वह किसी तरह कह पाया, "महाराज, आप यदि कृपा करके

थोड़ा उस ओर खिसक कर आसन लगाते तो बड़ी कृपा होती।"

—"काहे ?"

उसने उनकी दृष्टि तो किसी तरह सहन कर ली थी, परन्तु गले की आवाज को सुनने के साथ ही साथ, वह कई कदम पीछे हट आया। जमीदार, दूर खड़े सब कुछ देख रहे थे, परन्तु काफी दूर रहने के कारण, उभय पक्षों की वार्ता नहीं सुन पा रहे थे। महाराज ने दया करके स्वतः ही फिर कहा, "जाओ, वहाँ जाकर तंबू गाड़ो, कहते हुए उन्होंने लगभग आध मील दूर, नीचे की ओर, एक स्थान की तरफ इशारा किया। "जो भाग" की उन्होंने जोरदार आवाज लगाई। उस गंभीर गर्जन को सुन कर, जमीदार के सारे आदमी तुरत भाग खड़े हुए। जमीदार ने जिज्ञासा की "क्यों वापस चले आये ?"—"हुजूर, यह साधु जाना नहीं चाहता है। कहता है, नीचे जाकर तंबू लगाओ, भाग ,—" "—तभी बेटा, तुम लोग भाग आये हो ! जाओ, मगर यों नहीं जाता है तो जबरदस्ती हटा देना, समझे ?"—"बाबा," उच्च स्वर की पुकार सुन कर जमीदार चौंक पड़े। पीछे मुड़कर उन्होंने देखा कि उनकी दस-ग्यारह वर्ष की कन्या साधु को घेर कर खड़ी हुई है, और बैठे हुए साधु का सिर उस खड़ी हुई बालिका से भी ऊँचा है। पिता के सिर उठाकर देखते ही, बालिका ने कहा, "बाबा, यहाँ आकर तो देखो कि यह शरीर कितना ताकतवर है और पत्थर के जैसा सख्त है।" कहते हुए उसने अपने दाहिने हाथ से साधु का हाथ दबा कर दिखाया। साधु का शरीर छूकर, देखने की इच्छा तो जमीदार को थी ही नहीं, वरन् लड़की का भी ऐसे मैनाक सदृश, भीषणाकार व्यक्ति के पास खड़े रहना भी पसन्द नहीं था। मन ही मन, उनके अंदर भी भय का संचार हो रहा था। उन्होंने पुकारा, "चली आओ, वहाँ मत रुको"। लड़की ने जिद पकड़ ली—"आओ न बाबा, देखो तो !"

किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया, कि इसी बीच पहाड़ के

रास्ते, एक जट-जूटधारी साधु अत्यन्त समीप आ पहुंचे हैं । उनके कंधे पर एक पीतल का कलश है। साधु को देखते ही, वे कलश को रास्ते पर रख कर, तेजी से दौड़ते हुए जब पास से निकल गये, तब जमीदार और उनके कर्मचारियों की उनपर दृष्टि पड़ी । सन्यासी दौड़ते हुए जाकर जमीदार की कन्या के सामने खड़े हुए । उसके बाद, उन्होंने सिर झुका कर कन्या को प्रणाम किया। यह काण्ड देख कर जमीदार एवं सभी उपस्थित व्यक्ति, विस्मय से अवाक् रह गये ।

ऋषिगण—"हम लोग भी विस्मित हो रहे हैं। हे सौति, किस कारण से प्रधान सन्यासी ने इस बालिका को प्रणाम किया, वह हम लोगों को बताने का कष्ट करें।"

सूत—"जटाजूट धारी सन्यासी, अपने गुरु के लिये दूध लेकर वापस आ रहे थे। दूर से ही यह दृश्य देखकर, चमत्कृत एवं विस्मित हो उठे । कौन यह पुण्यमयी बालिका है, जो उन अंगों को स्पर्श करने का अधिकार पा गयी ? जिसका इतना बड़ा भाग्य है, वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है । यही सोचकर उन्होंने प्रणाम निवेदित किया था। उनके गुरु के चरणों के स्पर्श का सौभाग्य एवं अधिकार केवल सिद्ध पुरुषों को प्राप्त था । इसीलिये इस बालिका के भाग्य एवं अधिकार को देख कर वे विस्मित हो उठे थे।"

ऋषिगण—"यह बालिका कौन थी, यह तो आपने बताया ही नहीं ?

सूत—"जमीदार की पुत्री, यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ, इससे अधिक वर्त्तमान में उसका कोई परिचय नहीं है । उसके बाद, क्या हुआ, जानते हैं ?"

ऋषिगण—"आपकी वार्ता से ही जान सकेंगे, आप कहते चलें।"

सूत—"फिर सुनें, अकस्मात, जमीदार के तंबू में शोर-गुल तथा चीख-पुकार की आवाज सुनायी पड़ी । एक विशाल काय, पहाड़ी

अजगर, पता नहीं कैसे तंबू के अंदर घुस गया था। चौके में, पके हुए भोजन बर्त्तनों को उलट-पलट करता हुआ,वह अंत में तम्बू के बाहर निकल गया। इसी कारण, डरे हुए लोगों की चीख-पुकार सुनायी पड़ रही थी। इसके बाद, वह विशाल अजगर, गहन वन-क्षेत्र में अदृश्य हो गया। साधु ने पुकार कर जिज्ञासा की, क्या हुआ है ? सारा विवरण सुनने के बाद, उन्होंने शिष्य को आदेश दिया,"जाओ, उन सभी के भोजन की व्यवस्था कर दो।" संयासी ने जमीदारके दर-वान से पूछा,"तुम लोग कुल कितने आदमी हो ?" जमीदार के पुराने भृत्य ने उत्तर दिया, "हम लोग कुल उन्नीस व्यक्ति हैं।"

—"जाओ, भोजन ले जाने के लिये वर्त्तन लेते आओ।" आदेशानुसार, कई बड़े-बड़े परात तथा भगौने लेकर नौकर हाजिर हुए। साधु,अपने पीतल के कलश से एक के बाद एक खाद्य सामग्री निकाल कर देने लगे, तथा क्रमशः नाना प्रकार की खाद्य सामग्री से सारे वर्त्तन भर गये। साधु ने कहा, "जाओ, भोज्य सामग्री लेकर खिसक जाओ। खबरदार, इस तरफ अब आना नहीं, भागो।"

ऋषिगण ने जिज्ञासा की, "हे सुत, आप के इस वृत्तान्त के साथ भगवान वेद-व्यास के लींला-देह ग्रहण करने का क्या तारतम्य है, वह हम लोग समझ नहीं पा रहे हैं।"

सूत ने कहा—"आप किस तरह समझ पायेंगे, वृत्तान्त तो अभी समाप्त भी नहीं हुआ। किसी घटना का अन्त न देख कर अथवा जानकर, कोई राय दे देने पर ऐसा ही होता है। अर्थात्, किसी वस्तु को समझने के लिये जिस तरह उसका आदि जानना आवश्यक है, उसी प्रकार उसका अन्त भी जान लेना उचित है। इस सत्य को आप लोगों ने अधैर्य के कारण विस्मृत कर डाला था।"

ऋषिगण—"हे महाभाग सूत, आप हम लोगों को अत्यन्त लज्जित कर रहे हैं। कृपया हम लोगों के आग्रह पर आप शीघ्र इस वृत्तान्त को शेष करें।"

सूत,—"कह ही रहा हूँ। आप सुनें—दिन ढल रहा है, तथा सूर्य अस्ताचल की ओर शनैः-शनैः अग्रसर होने लगा है। पहाड़ी प्रदेश पर अभी से संध्या की छाया दृष्टिगोचर होते जा रहे हैं। जमीदार के तम्बू में सभी गप-शप एवं कार्यों में व्यस्त हैं। सहसा, एक भीमकाय व्याघ्र, भयानक गर्जन करता हुआ जिससे सारा वनाञ्चल कॉप उठा, जमीदार के तंबू के सामने उपस्थित हो गया। चीख-पुकार तथा क्रन्दन से कोहराम मच गया, तथा प्राणों के भय से सभी यत्र-तत्र छिप गये। दूसरे की क्या दशा हो रही है, इसे देखने का किसी को होश तक नहीं था। इतना सोचने लायक, किसी की अवस्था भी नहीं थी। उथल-पुथल मचा कर बाघ, एक ओर अदृश्य हो गया। उसके बाद तम्बुओं में सनाटा छा गया।

इसी समय तम्बू में मानव कण्ठ स्वर सुनायी पड़ा। जमीदार की गृहिणी, भय के मारे बेहोश हो गयीं थीं। वे संज्ञा-लाभ होते ही तम्बू के बाहर आयी। विश्वस्त भृत्य ने, निकट की ही एक झाड़ी में आश्रय लिया था। मालकिन को देखकर, वह भी बाहर निकला। क्षण भर बाद, जमीदार भी अपने छुपने के स्थान से निकल कर वहां उपस्थित हुए।

कर्त्ता को देखते ही गृहिणी ने आर्त स्वर में प्रश्न किया, बच्ची, को तो नहीं देख रही हूँ, वह कहाँ है ?

जमीदार फूट पड़े, रुँधे हुए गले से उन्होंने उत्त र दिया। बच्ची नहीं है, बाघ उसे मुँह में पकड़ कर ले गया।

पुराने भृत्य ने आश्वासन देते हुए कहा, नहीं-नहीं, आप लोग खामखाह चिन्ता कर रहे हैं। वह कहीं छुपी हुई है, अभी आती ही होगी।

जमीदार ने कहा, नहीं रे शंभू, तुम्हारी बच्ची अब नहीं है। गृहिणी ने कहा, क्या कहते हो ?

—बेटी मेरे तम्बू के सामने खड़ी, मेरे साथ बातचीत कर रही

थी, बाघ उसे मुँह में पकड़ कर उठा ले गया।

गृहिणी ने तुरत जिज्ञासा की, शंभू, तुम एक साधु की बात कर रहे थे, न ?

—हाँ, माँ ।

—तूने अपनी आखों से उन्हें खाद्य सामग्री देते हुए देखा था ?

—हाँ माँ ।

—उनके पास मुझे एक बार ले चलो । जमीदार ने, अबतक अपने को सँभाल लिया था। कहा, चलो उन्हीं के पास चलें। वे तम्बू को नीचे ले जाने के लिये कह रहे थे। उनकी बात, यदि उस समय ही हम लोगों ने सुन ली होती तो आज इस विपत्ति में हम लोग नहीं पड़ते ।

तीनों व्यक्ति जाकर साधु के पास रो पड़े । वही मैनाक सदृश पुरुष बैठे हुए हैं, तथा उनके शिष्य, सन्यासी, का कहीं पता नहीं है। साधु ने पूछा—क्या हुआ ?

—बाबा, मेरी बच्ची को बाघ ले गया।

—तुम कहाँ थे, भाग गये थे ?

—हाँ बाबा ।

—तुम क्या पिता हो ?

—बाबा, भय तथा विपत्ति के कारण मेरी बुद्धि ठीक नहीं थी ।

—भय तथा विपत्ति में जो बुद्धि भ्रमित हो जाती है, उसे तो अच्छी बुद्धि नहीं कहा जा सकती ! मुझसे क्या चाहते हो ? जमीदार ने कहा, बच्ची क्या अबतक जीवित होगी, बाघ ने अबतक तो उसे मार ही डाला होगा ।

सुनते ही साधु इस तरह हँस पड़े कि सारा का सारा पार्वत्य प्रदेश, भय से सिहर कर फिर स्तब्ध हो गया ? जमीदार, उनकी गृहिणी एवं विश्वस्त भृत्य शंभू, तीनों को यही भान हुआ कि इनके समक्ष व्याघ्र का गर्जन भी अत्यन्त स्निग्ध ध्वनि है ।

—क्या कहते हो, लड़की को बाघ खा गया ? मेरे शरीर का जिसने स्पर्श किया है बाघ तो दूर की बात, यमराज को भी उसे स्पर्श करने का साहस नहीं है। लड़की चाहते हो ?

—बावा, यदि दया करके वापस दिला सको—

—ठीक है, जाओ। इसी राह से आगे बढ़ जाओ। कुछ दूर जाते ही बाघ की आवाज सुनने को मिलेगी। उसी आवाज की ओर अग्रसर होना, लड़की मिल जायगी। क्यों, जाने का साहस है ?

जमीदार ने कहा—बाबा, भय के कारण बुद्धि भ्रमित हो गयी थी, अब ज्ञान फिर वापस आ गया है। बच्ची यदि चली गयी, तो बचे रहने का लाभ क्या है ? इसके अलावा मेरी अवस्था भी अधिक ही है। चल शंभू, तू मेरे साथ चल। फिर स्त्री की ओर मुड़ कर उन्होंने कहा, तुम इन्हीं के पास रुको।

—नहीं, मैं भी जाऊँगी।

—तुम्हारे जाने का कोई प्रयोजन नहीं है।

साधु ने स्वामी तथा स्त्री के वार्तालाप में बाधा दी, धमकाते हुए कहा—कोई यहाँ रुकेगा नहीं। तीनों ही चले जाओ।

जमीदार ने कहा, बाबा, इसे भी जाने को कहते हैं ?

अच्छा शंभू, तब तू भी यहीं रुक, मैं अकेला ही जा रहा हूँ। साधु फिर वही भयंकर हँसी-हँस पड़े। अरण्य क्षेत्र के अलावा, इन तीनों व्यक्तियों का भी हृदय-स्पन्दन बढ़ कर फिर सारा परिवेश स्तब्ध हो गया।

—अरे मूर्ख, बात कान में घुसती ही नहीं है ? मेरे शरीर को जो सहला चुका है, उसके माँ-बाप को स्पर्श करने का दुःसाहस यम को भी नहीं है।

साधु को छोड़ कर तीनों, पहाड़ के रास्ते पर काफी दूर तक बढ़ आये हैं। इसी समय बाघ का गर्जन उनके कानों में पड़ा। थोड़ा और आगे बढ़ने पर गर्जन और तीव्र हो उठा और उन्हें यह स्पष्ट

हो गया कि बाघ अधिक दूरी पर नहीं है । जमीदार ने पूछा कि किधर से आवाज आ रही है ?

पत्नी ने उत्तर दिया,लगता है पूर्व दिशा से आवाज आ रही है । नौकर शंभू ने भी मालकिन की बात का समर्थन किया और जमीदार बाबू का भी यही अनुमान था ।

बाघ का गर्जन किस ओर से आ रहा है. इसका अनुभवी व्यक्तियों के अलावा कोई ठीक से अनुमान नहीं लगा सकता । ध्वनि एवं प्रतिध्वनि की कारसाजी के कारण यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है । और अनेक बार लोग बाघ के रास्ते से अलग हट कर जाने के बजाय सीधे उसके मुख में ही पहुँच जाते हैं ।

इन तीन व्यक्तियों ने भी उसी तरह की भूल की । शब्द का अनुसरण करते हुए, बाघ के निकट जाने के वजाय, उन्होंने विपरीत रास्ता अख्तियार किया । अब तक वे उत्तर मुखी होकर मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे, परन्तु अब वे दाहिनी ओर मुड़ गये ।

वे कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि तीनों की कनपट्टी पर पता नहीं किसने जोर से थप्पड़ सा मारा । इस आघात का धक्का संभालने के बाद उन्होंने देखा कि वे बिलकुल बाघ के शरीर पर ही आ गये हैं—पास ही घास की शय्या पर जमीदार की लड़की सोयी हुई है ।

पिता एवं माता को अकस्मात् सामने देखकर कन्या जल्दी से उठ कर खड़ी हुई और मां से लिपट गयी । तुम लोग आ गये हो, किस तरह आये ? भय का कोई कारण नहीं है, माँ, यह बहुत अच्छा बाघ है, कहती हुई वह बाघ के माथे को सहलाने लगी । इस अमानवीय व्यापार से माता-पिता के मन की क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है ।

बाघ गुरगुराता हुआ, उठ कर खड़ा हुआ और कुछ कदम आगे बढ़ कर, घूम कर देखने लगा ।

लड़की ने कहा, चलो, वह हम लोगों को बुला रहा है । बाघ का अनुसरण करते हुए सभी उस दुर्भेद्य एवं दुर्गम पथ पर धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे । रास्ता चलते हुए, माँ ने लड़की से पूछा, तुझे भय नहीं लगता ?

—नहीं माँ, जरा भी नहीं लगा । जब भी थोड़ा भय महसूस हुआ, उसी समय उसी साधु की बड़ी-बड़ी आँखों वाला मुस्कराता चेहरा नेत्रों के सामने आ गया । बाघ ने मुझे यहाँ लाकर क्या किया, जानती हो ?

—क्या किया उसने ?

—मुझे उतार कर यहाँ रखने के बाद, उसने अपने पंजों की चपेट से घास तथा मिट्टी बराबर की तथा सोने लायक बिछावन की रचना कर डाली ।

बाघ रास्ता दिखाता हुआ आगे चलता जा रहा था । उसके मुँह से गुर्राहट निकल रही, थी तथा उनके पीछे, चारों मनुष्य उसका अनुसरण करते हुए, आगे बढ़ते जा रहे थे । माता ने जिज्ञासा की, तुझे भूख तो बहुत लग आयी होगी ?

लड़की ने उत्तर दिया, तुमने अच्छी याद दिलायी । जानती हो, इस बाघ ने कैसा काण्ड किया ?

—कैसा ?

—बाघ ने जैसे ही मुझे यहाँ लाकर रखा, मुझे ऐसी भूख तथा प्यास लग आयी थी कि तुम्हें क्या बताऊँ ! बाघ ने किस तरह इस बात को समझा, मैं नहीं जानती । परन्तु उसने किया यही कि मुझे यहाँ रख कर तुरत चला गया । थोड़ी ही देर बाद, वह लौट आया और मैंने देखा कि उसके मुँह में एक पोटली है । यह सोच कर कि कुछ फल मैं साधु को दूँगी, मैंने बहुत सारे फल एक रूमाल में बाँध रखे थे । बाघ, वही पोटली मुँह में दबा कर, तंबू से, उठा लाया था । उसे रख कर उसने पंजे से उसे मेरी ओर ठेल दिया । बाघ होने से क्या हुआ मां, वह सारी बातें समझता है ।

अन्ततः बाघ द्वारा मार्गदर्शित, यात्री दल, उस स्थान पर आ गया, जहाँ तीनों व्यक्तियों को चपेटाघात लगा था। उसके बाद, घूमकर, क्षण भर के लिये वह बालिका को अपलक देखता रहा। फिर भीषण गर्जना से सारे स्थान को कम्पित करता हुआ, एक बड़ी छलांग लगा कर जंगल में अदृश्य हो गया।

परिचित मार्ग पर, कन्या को लेकर, माता-पिता वापस लौट आये। आते ही उन्होंने देखा कि पत्थर खाली पड़ा है और साधु वहाँ पर नहीं हैं। यह कथा यहीं समाप्त हो गयी, अब आप लोगों के जो प्रश्न हैं, पूछें।"

ऋषिगण—"हे सूत, हम अपना पुराना प्रश्न ही आपके समक्ष पुनः दोहराते हैं कि इस कहानी के साथ व्यास देव के शरीर-ग्रहण का क्या तारतम्य है ?"

सूत—"हे ऋषिगण, यह बंगाली ब्राह्मण जमीदार और उनकी पत्नी ही, व्यास देव के इस बार के शरीर के पिता एवं माता हैं, और यह बालिका ही उनकी बहन है।"

ऋषिगण ने जिज्ञासा की,—"इन भाग्यवान दम्पति का पुत्र, क्या साक्षात्कार के बाद पैदा हुआ था ? अधिक प्रश्नों की आवश्यकता क्या है, कृपया आप व्यास देव के उक्त देह-ग्रहण के पूर्व तक की, बालक के सम्बन्ध में सारी कहानी हमें सुनाने की कृपा करें, यही हम लोगों की अभिलाषा है।"

सूत ने कहा—"आप लोगों की सम्पूर्ण अभिलाषा, पूर्ण रुप से पूरा करने का कोई प्रयोजन नहीं समझता। इसलिये संक्षेप में कुछ निवेदन कर रहा हूँ। अपूर्व रूप, कान्ति, लावण्य एवं देह सौष्ठव के साथ बालक ने जन्म ग्रहण किया एवं माता-पिता ने इसी कारण पुत्र का नामकरण किया, दिव्येन्दु।

ऋषिगण—"अहा, बड़ा अपूर्व एवं उपयुक्त नामकरण किया गया, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सूत-"किशोरावस्था में उन्होंने एक ऋषि के आश्रम में अध्ययन किया था।

ऋषिगण—"किस ऋषि के आश्रम में इन्होंने शिक्षा प्राप्त किया था? कलि में भी ऋषि के आश्रम की बात सुन कर हमारे विस्मय की सीमा नहीं रही।"

सूत—"आपके विस्मय का कोई कारण नहीं है, तथा यह युक्ति पूर्ण भी नहीं है। आप तो पूरी तरह से अवगत हैं कि कलि में भी अनेक महान ऋषि जन्म ग्रहण करते हैं—उन्होंने ऋषि-कवि रवीन्द्र नाथ के शांतिनिकेतन नामक आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी।"

ऋषिगण—"ऋषि-कवि रवीन्द्र नाथ के सम्बन्ध में हम लोगों को कुछ बताने का कष्ट करें।"

सूत—"आप लोग बराबर ही मुझे विपत्ति में डाल देते हैं। जो कुछ भी सुनें, उसी के विषय में कुछ कहलाने का आग्रह करने लगें, तब वह बातचीत कब समाप्त होगी, यह भगवान ही जानें। ऋषि-कवि के विषय में अन्ततः इतना ही जान लें कि आधुनिक काल में उपनिषदों का इतना बड़ा भाष्यकार और कोई नहीं हुआ है। अतीत काल में जिस तरह राजर्षिगण राज-शक्ति एवं ब्रह्म-शक्ति दोनों को ही धारण करते थे, रवीन्द्रनाथ भी उसी तरह कवि-शक्ति एवं ऋषि-शक्ति के धारक थे।"

ऋषिगण—"हे सूत, क्या वे अपने इस आश्रम-वासी किशोर शिष्य को पहचान पाये थे?"

सूत—"नही, वे उन्हें नहीं जान पाये थे। आश्रम त्याग करने के उपरान्त, बालक के अलौकिक परिचय से वे कुछ हद तक अवगत हो पाये थे। वह भी जीवन के अन्तिम दिनों में, ऋषिकवि रवीन्द्र-नाथ, उसके साथ दूर से ही बातचीत करने की शक्ति एवं सौभाग्य लाभ कर सके थे। परन्तु अपने जीवन के इस अध्याय की कहानी, रवीन्द्रनाथ ने कभी किसी के सामने व्यक्त नहीं किया। दूर-श्रवण,

दूर दर्शन इत्यादि शक्तियों के वे अधिकारी थे, इस बात की सूचना उनके निकटतम सहयोगियों तक को नहीं थी । इस तरह के संयम की ऋषि ने अंत तक रक्षा की ।"

ऋषिगण—"उन्होने इस विषय में ऐसे मौन तथा संयम का अवलम्बन किस कारण किया था ?"

सूत—"सांसारिक दृष्टि से वे संसार के लोगों के रीति-रिवाजों की रक्षा करने के पक्षपाती थे । यहाँ तक कि वे समाधि लगा लेने में सक्षम थे, यह तथ्य उनके निकटतम सहचर तक समझ या जान नहीं पाये । उन्हें समाधिमग्न अवस्था में देख कर सभी को यही आभास होता कि सब लोगों की तरह वे भी ध्यान में मग्न हैं । यदि आप और अधिक प्रश्न न करें तो ऋषि-कवि के जीवन की एक गोपन तथा अप्रकाशित कहानी मैं आप लोगों को सुना सकता हूँ ।"

ऋषिगण ने कहा—"कष्ट-साध्य होते हुए भी हम लोग मात्र एक कहानी से ही संतुष्ट होने की चेष्टा करेंगे । हे सूत, आप शीघ्र उस अप्रकाशित कहानी को कहने का कष्ट करें ।"

सूत—"हे ऋषिगण, इन आधुनिक ऋषि-कवि का यह अभ्यास था कि ब्रह्म-मुहूर्त में शय्या त्याग करके वे कुछ देर अपनी पुष्पवाटिका में भ्रमण करते थे । एक वार अस्वस्थता के कारण बिस्तर पकड़ लेने के कारण, कई दिनों से इस भ्रमण में व्यवधान पड़ रहा था । ठीक होकर उठने के बाद, सेवक का हाथ पकड़ कर, वे बगीचे में जाते तथा जी भर कर प्रातःसमीर एवं पुष्पों का सौरभ ग्रहण करते तथा कभी-कभी फूलों को अपने हाथ से सहलाते । एक वार भोर में उठ कर प्रस्तुत होकर वे अपेक्षा कर रहे थे कि उन्हें बगीचे में ले जाने के लिये उनका सेवक आवे । परन्तु उसके आने में विलम्ब होने लगा । आराम कुर्सी पर वे आखें मूँद कर व्यथित मन से बार-बार कहने लगे—आज तुम्हारा प्रातः समीरण, फूलों की गंध तथा उनका स्पर्श एवं दर्शन मेरे भाग्य में नहीं है । क्या इस

सुख-सौभाग्य से भी तुम मुझे आज वंचित करोगे ? तुम्हारी उन्मुक्त हवा, तुम्हारी गन्ध, तुम्हारा प्रकाश, तुम्हारा वर्ण, इन सभी को मैं कितना प्यार करता हूँ, उसे क्या तुम नहीं जानते ? तुम्हारी इतनी सुन्दर धरित्री को, क्या कभी किसी ने इतना प्यार दिया है ?''

ऋषिगण—''हे सूत, ऋषिकवि की इस वेदना ने हम लोगों को अभिभूत कर लिया है। भगवान ने क्या इस प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया ? वे प्रेममय तथा भक्तों के अधीन हैं, यही तो हम लोगों को ज्ञात है।''

सूत—''ऋषिकवि की इस वेदना ने, उस परम वेदना का स्पर्श किया था। आखें खोलते ही उन्होंने देखा कि घर की दीवार खिसक कर अदृश्य हो गयी है। तथा उनकी दृष्टि के सम्मुख ऊषा का प्रभात एवं पुष्प-वाटिका उद्‌घाटित हो रही है। फूलों की गंध से सिक्त प्रात-समीरण की लहर पर लहर, उनका आलिगन एवं प्लावन कर रही है। आँख भर कर उन्होने इस दृश्य को देखा और जी भर कर बयार का आनंद लिया। पुष्पों की सुगन्ध का आनन्द लेते हुए उनके दोनों नेत्रों से अश्रुधारा फूट पड़ी--तुम भी प्रेम का प्रतिदान करते हो; इस प्रेम को मैं किस तरह धारण कर पाऊँगा ? प्रभु, तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार।''

इसी समय सेवक ने उपस्थित होकर कहा; देरी हो गयी है, क्या बगीचे में नहीं चलेंगे ?

शांत स्वर में ऋषि ने उत्तर दिया, ''जाऊँगा, चलो-''

ऋषिगण-''हे सूत,हे महाभाग, आपने भक्त एवं भगवान की इस अपूर्व कहानी का श्रवण कराया, उससे हम लोगों का शरीर एवं मन भी आनन्द से विगलित होता जा रहा है। यह भगवत्-कथा, हृदय के मालिन्य को दूर कर देती है तथा हृद-कपाट खुल जाते हैं, उसके प्रकाश एवं आनंद से हृदयाकाश परिपूर्ण हो जाता है, ऐसा हम लोगों ने ब्रह्मज्ञों से सुना है।''

सूत—"परन्तु, यह कहानी जनसाधारण के लिये विश्वसनीय नहीं है ! वे समझेंगे, यह निरी कल्पना ही है ।"

ऋषिगण—"हे सूत, सत्य को पहचान लेने की शक्ति सभी के पास है । अगर सभी स्वस्थ मन से इसका श्रवण करें, तो इसेमिथ्या कहानी समझ कर उपेक्षा, कभी नहीं कर पायेंगे । हे सूत, जिस प्रसग को आप सुना रहे थे, उसे जारी रखें ।"

सूत—"वह अलौकिक युवक शांतिनिकेतन आश्रम की शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त,संगीत शिक्षा हेतु लखनऊ गया था । और संगीत शिक्षा में पूर्ण पान्डित्य लाभ करने में समर्थ हुआ था । वहाँ से उसने एक पत्र, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ को लिखा था । रवीन्द्रनाथ ने प्रत्युत्तर में क्या लिखा था, जानते हैं ?"

ऋषिगण-"उसे आपसे जानने के लिये ही तो हम लोग व्यग्रहै ।"

सूत—"यह भी एक गुप्त एवं अप्रकाशित घटना है,[रवीन्द्रनाथ के जीवन की । प्रत्युत्तर में उन्होंने एक कार्ड पर एक स्वरचित गान लिख भेजा था । गान की प्रथम पंक्तियां ये हैं ।—

तृणदल, बल, बल,<br>
से कि एल, एल से कि ?<br>
नदी जल छल छल<br>
कार तरे, बल देखि ?

इस गीत को उस अलौकि पुरुष ने सहज रुप से, अपना समझ कर ही, ग्रहण किया है और उसे स्वर-बद्ध करके कभी-कभी गा भी लेते हैं । परम-गुरु, भगवान वेद व्यास के चरणों में प्रदत्त, ऋषि-कवि रवीन्द्रनाथ का यह गान-गीति अर्घ्य है । इस गीत का जो अंश आप लोगों ने सुना, इससे अधिक कभी संसार में प्रकाशित नहीं होगा ।"

सूत आगे कहते गये—"आप लोग, ब्रह्माविद-श्रेष्ठ पुरुष की कहानी सुनना चाहते थे । मैं जिसकी बात अब कहूँगा, वे मद्रास

में, एक होटल वाले के रुप में थे और अब उनका देहान्त हो चुका है।

मद्रास के एक मध्यम आय वाले परिवार में इन्होने जन्म ग्रहण किया। जिस समय उनकी अवस्था छ-सात वर्ष की थी, एक सरल बालक के रुप में उन्होंने गाँव के सभी निवासियों का विशेष स्नेह अर्जित किया था। कोई-कोई तो यहाँ तक कह डालते कि यह बौड़म है, इससे कुछ होने का नहीं। परन्तु बालक की विशेपता पिता की दृष्टि से नहीं छिप सकी। इसी कारण, अपनी इस सन्तान पर उनका विशेष स्नेह एवं ममत्व था। रात्रि का भोजन शेष करके, पिता बालक पुत्र के साथ सो रहे हैं। रोने की धीमी आवाज सुन कर उन्होंने कहा, क्यों रे, रोता क्यों हैं ? बालक की रुलाई अब स्पष्ट रुप से सुनाई पड़ने लगी। पिता ने शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा, क्या हुआ ? रोता है, बता न ?

पिता के स्नेह-स्पर्श एवं स्वर सुनने के बाद, अंततः बालक ने उत्तर दिया—नारियल का पेड़ रो रहा है।

पिता ने विस्मित होकर प्रश्न किया-नारियल का पेड़ रो रहा है ?

—हाँ, तुम सुन नहीं रहे हो ? यह देखो रो रहा है।

—क्यों रो रहा है ?

—उसका नारियल तुम लोगों ने तोड़ लिया है, इसीलिये पेड़ अपने पुत्रों के लिये रो रहा है।

पिता ने सांत्वना देते हुए कहा—तुम रोओ नहीं, उसमें फिर नारियल लगेंगे। फिर बच्चे होंगे। अब सो जाओ।

कुछ क्षण नीरवता में कट गये। फिर पिता ने आवाज सुनी, बापू ! पिता ने कहा—क्यों पुकार रहे हो ?

—उठो चलें।

—क्यों ?

नारियल के पेड़ को एक बार देख आवें ।

घर में दूसरी तरफ, शिशु-कन्या को लेकर माता सोयी हुई हैं। अबतक वे पिता-पुत्र का वार्तालाप सुन रही थी। काफी देर तक सुनने के बाद उन्होंने कहा: बेटा सो जाओ; परेशान मत करो। कल प्रात: जाकर नारियल का पेड़ देख आना।

पुत्र ने धीरे-धीरे पिता से कहा, बापू, वे सारी रात रोते ही रहेंगे।

फिर—चलो, कहते हुए पिता उठ पड़े। पिता-पुत्र दरवाजा खोलकर बाहर निकले। पीछे से माँ का स्वर सुनाई पड़ा, अच्छा लड़का है, रात को भी सोने का नाम नहीं लेता। बाप भी उसी के अनुरुप हो गये हैं। उसने कहा और वे भी चट तैयार।

शुभ्र ज्योत्स्ना में दोनों नारियल के पेड़ के नीचे आकर खड़े हुए। विशेष प्रयोजन होने के कारण, आज दिन में इसी वृक्ष से कई कच्चे डाभ तोड़े गये थे।

बालक ने वृक्ष के तने पर हाथ फेरते-फेरते कहा, तुम रोओ नहीं। फिर तुम्हारे पास फल होंगे। फिर बच्चे होंगे। पिता खड़े, इस वार्तालाप को सुनने लगे। बालक के कण्ठ में क्या जादू था, भगवान ही जाने, परन्तु निर्जन रात्रि की शुभ्र ज्योत्स्ना में उनका शरीर बार-बार पुलक एवं रोमांच से भर उठा। बालक, वृक्ष-माता को रोने से मना करता जा रहा है, तथा उसके नेत्रों से भी अश्रुकण ढुलक कर गालों पर बहते जा रहे हैं।

पिता ने पुकारा, बेटा अब चलो।

—चलो बापू, कहते हुए, बालक ने वृक्ष का दोनों हाथों से आलिंगन करते हुए कहा, तुम अब और नहीं रोओ।

वापस आते समय पिता ने पूछा, वृक्ष ने तुम्हारी बात को सुना?

—हाँ बापू, अब वह नहीं रोयेगा।

पुत्र के इस ब्यवहार से, पिता शंकित हो उठे। स्त्री से उन्होने

इस विषय में कुछ नहीं कहा, परन्तु उनके मन में यह आशंका बल-वती हो उठी कि यह बालक असाधारण है, तथा यह घर में रुक नहीं सकेगा। वे स्वयं भी शिवभक्त एवं साधक प्रकृति के मनुष्य थे। जीव-जगत् में सबके साथ एकात्मानुभूति कितनी वास्तविक एवं गंभीर होने पर यह हो पाता है कि वृक्ष की वेदना हृदय को स्पर्श कर सके, यही वे सोचते ही रह गये। उनके हृदय में दिन-दिन यह विश्वास जोर पकड़ता गया कि कोई महापुरुष उनके घर में उनके पुत्र के रुप में आये हुए हैं। पुत्र के प्रति स्वामी के अस्वाभाविक स्नेह को देख कर स्त्री को यही भान हुआ कि लड़का बौड़म एवं सरल है, इसीलिये स्वामी की विशेष ममता, उसके लिये हो गयी है।

बालक को गांव के स्कूल में भर्ती करा दिया गया। वहाँ भी उसका अद्भुत सारल्य सभी छात्रों, यहां तक कि पंडितों की दृष्टि में पड़ने में भी विलम्ब नहीं हुआ। यह सारल्य, सभी के लिये नित्य कौतुक का विषय हो गया।

पाठशाला, प्रातः ही आरम्भ हो जाती है। बच्चों की टोलियाँ उस ओर चल पड़ी है। जैसा कि बालकों का स्वभाव होता है, सभी हल्ला-गुल्ला तथा हाथा-पाई करते हुए, बगल में पुस्तक दबाए चले जा रहे हैं। एक छात्र ने, इस बालक को एक जोरदार धक्का दिया। वह रास्ते की बगल वाली जमीन पर गिर पड़ा।

सभी, यह अपेक्षा कर रहे थे, कि उठ कर आते ही वह उस छात्र पर आक्रमण करेगा एवं धक्का देने का प्रतिशोध लेगा। संभवतः उसकी ऐसी इच्छा भी थी। परन्तु उठ कर बैठते ही, उसने एक कांड ही कर डाला। गिरे हुए पोथी-पत्र को समेट कर, वह आक्रमणकारी बालक की ओर आकर कहने लगा। तुमने क्या कर डाला, देखो।

रात की ओस से उस समय घास भींगी हुई थी। उसी घास के ऊपर, बालक के शरीर की स्पष्ट छाप पड़ गयी थी और रौंदी

हुई घास, सारी की सारी, जमीन पर लोट गयी थी।

बालकों ने प्रश्न किया, क्या हुआ है ?

देखते नहीं हो, सभी घास, व्यथा पाकर, किस तरह तिरछी होकर पड़ी है। जाने दो, जाने दो, कहते हुए, वह स्नेह से घास को सहलाने लगा।

एक बालक ने पुकारा, क्या हुआ है, अब उठ कर आ जाओ।

—इनको भी तो व्यथा होती है, इन्हें भी तो चोट लगती है, तुम लोग समझते क्यों नहीं ? कहते हुए, वह पोथी-पत्र लेकर उठ खड़ा हुआ तथा भींगी हुई घास को बचाते हुए कूद कर रास्ते पर आ गया। उस दिन पाठशाला में, गुरु महराज के लिये भी, यह सारा काण्ड, एक कौतूहल का विषय बना रहा।

उन दिनों उसकी अवस्था बारह वर्ष के लगभग होगी। एक दिन मध्याह्न के समय, जब सभी घरों के गृहस्थ विश्राम कर रहे थे, बालक बाहर निकल पड़ा। रास्ते पर आते ही उसने देखा कि खूँटे से बँधी गाय, घास के अभाव में जमीन पर सोयी हुई है। रस्सी खोलकर, गाय को लेकर बालक अपने ही शाक-सब्जी के बगीचे में घुसा। गाय को यथेच्छ आहार का सुयोग देकर, बालक दूर खड़ा गाय की परम तृप्ति पर दृष्टिपात करता रहा। इसी समय एक जटा-जूट एवं कौपीनधारी वृद्ध सन्यासी उसके समक्ष आविर्भूत हुए। उनके अकस्मात् आविर्भाव से, बालक, बिलकुल ही विस्मित एवं भयभीत नहीं हुआ। स्वभाव- सुलभ सरलता से ही उसने प्रश्न किया—आप कौन हैं ?

सन्यासी ने–'पूर्ण ब्रह्म तेरा नाम, घर में बैठ पुराओ काम,' इसी की रट लगाते हुए, बालक की कई बार परिक्रमा की। उसके बाद बालक के सम्मुख आकर, उसे साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करके खड़े होते ही सन्यासी फिर दृष्टिगोचर नहीं हुए। वे जिस तरह आये थे, उसी तरह अदृश्य हो गये।

पास के घर की बहू, पता नहीं किस कार्य से बाहर निकली

थी । इस सारे काण्ड पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसने पुकार कर पूछा, वह कौन था, बेटा ?

—मैं नहीं जानता ।

—तुझे उसने प्रणाम किया ?

—हाँ

—क्या कहा तुझसे ?

बालक ने उत्तर दिया—बड़बड़ाते हुए, न जाने कौन सा मंत्र पढ़ रहा था, समझ नहीं पाया ।

बहू ने कहा—गाय ने सब कुछ चर डाला है और तू देख नहीं रहा है ?

—मैंने ही तो उसे यहाँ लाकर छोड़ दिया है, जिससे वह भरपूर भोजन कर ले ।

—ठीक किया है, अब जल्दी से खिसक जाओ, नहीं तो मां देख कर बहुत गुस्सा होगी । उसे ले जाकर दूर बाँध आओ, कहती हुई, बहू घर के भीतर चली गयी। परन्तु, निर्जन दोपहरी में आज जिस दृश्य को उसने देखा, वह सदा के लिये, उसके मानस-पट पर अंकित हो गया।

इसके तीन दिन बाद की घटना। संध्या समय, खेल-कूद समाप्त करके, बालक घर के पास आया। पास वाले घर से, भयानक रुदन का स्वर उठ रहा था । कौन मर गया है, यह सोचते-सोचते बालक घर में घुस पड़ा ।

उसने देखा कि आसपास के घरों के बहुत से लोग आकर जमा हो गये हैं । बरामदे में एक चार पाँच वर्ष के बालक का शव लिटाया हुआ है। उसको जकड़ कर, वही पिछले दिन वाली बहू, जो उसकी माँ है, अर्धमूर्छित अवस्था में पड़ी है ।

बालक, अपनी माँ को पकड़ कर खड़ा हो गया और पूछा, माँ, क्या हो गया है ?

पुत्र का कंण्ठ स्वर सुन कर माँ चौंक पड़ी । पुत्र को पास खींचते हुए उन्होंने कहा, साँप ने काट लिया है।

—मर चुका है ?

—हाँ।

—सांप के काटने पर आदमी बचता नही है ?

एक वृद्धा जो सारी बात सुन रही थी, कह उठी, यह कोई ऐसा वैसा सांप नहीं था, गेहुँमन ने काटा है। डाक्टर, वैद्य तथा ओझा लोगों ने भी कम चेष्टा नहीं की।

वात भी सही थी। डाक्टर ने देख कर अपनी राय दे दी थी कि बालके प्राण-पखेरु, बहुत पहले ही उड़ चुके हैं।

—माँ !

—क्या है ?

—साँप क्यों काटता है ? काटने से मनुष्य मर जाता है, साँप को तो यह ज्ञात नहीं ?

इस अद्भुत प्रश्न के बाद माता ने धीमे स्वर में कहा, तू चुप तो रह ।

माता–पुत्र की बातचीत बहू के कानों में पड़ी और उसने सिर उठा कर देखा। उसके बाद उसने एक अद्भुत काण्ड कर डाला । मृत पुत्र की शय्या त्याग कर, वह उन्मादिनी की भाँति बरामदे से उतर आयी।

बालक के पैरों पर लोटते हुए उसने कहा, बाबा, तू इसे बचा दे । तू ऐसा कर सकता है । तू देवता है, तू मेरे पुत्र को बचा सकता है ।

बहू के इस काण्ड को देख कर सभी विस्मित हो उठे । सभी ने यही समझा कि पुत्र-शोक के कारण, उसकी मनः स्थिति ऐसी हो उठी है कि पागलपन की बात कर रही है। परन्तु दोपहरी का वह दृश्य तो उन लोगों को ज्ञात नहीं है । इसी कारण, बहू की इस

कातर प्रार्थना का मर्म, कोई समझ नहीं पाया।

बहू ने खड़े होकर, बालक का हाथ पकड़ा तथा सजल एवं कातर दृष्टि से देखते हुए उसने कहा—बचा दोगे न बाबा। तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।

सुन कर, बालक के हृदय में क्या हुआ, यह कहना कठिन है, परन्तु उसका मन करुणा तथा वेदना से विगलित हो उठा। वह भावाविष्ट की तरह, बरामदे के ऊपर आ गया। सभी की उत्सुक दृष्टि, उसका अनुसरण करते हुए, मृतक की ओर गयी।

बालक, मृत देह के पास आकर बैठ गया। शिशु के शरीर पर हाथ रख कर उसने कहा—तू उठ जा, सुन नहीं रहे हो, तुम्हारी माँ रो रही है। तुम मरो नहीं, इससे तुम्हारी माँ को व्यथा होगी। तुम उठो, कहते हुए उसने मृत शिशु का हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचा।

सभी ने देखा, इस आह्वान पर, मृत बालक ने आँखे खोल कर देखा, पलक झपकायी और उठकर बैठ गया। बहू ने बाघिन की तरह झपट कर, पुत्र को गोद में उठा लिया तथा बालक, चुपचाप, सभी की आँख बचाकर खिसक गया।

इस घटना के उपरान्त, बालक का उस ग्राम में निवास करना एक विकट समस्या हो गयी। कई दिन बाद, भोर में उठने पर यह देखा गया कि बालक बिना किसी से कुछ बतलाए, गृह तथा ग्राम का त्याग करके कहीं निकल चुका है।

इसके उपरान्त, हम इस बारह वर्ष के किशोर को, मद्रास शहर के एक होटल वाले के रुप में देखते हैं, जबकि उसकी अवस्था चालीस के लगभग है। श्रेष्ठ ब्रह्मविद् एवं भारत वर्ष के ब्रह्मज्ञ-समाज के शिरोमणि, एक सामान्य होटल वाले के रुप में, मद्रास शहर में निवास कर रहे हैं यह सूचना शहर के किसी निवासी को नहीं है। पृथ्वी की आश्चर्यजनक घटना के रुप में ही, इस तथ्य को स्वीकार करना

होगा। परन्तु, हिमालय से कन्याकुमारी एवं काबुल से कामख्या तक फैले, विशाल भूभाग से ब्रह्मज्ञ-गण इनके दर्शन की अभिलाषा लेकर इस होटल में गुप्त रुप से आया करते। वे स्वयं भी, आवश्यकता होने पर, दूसरी जगह जाते, परन्तु अपने होटल से किसी दिन अनुपस्थित नहीं रहते। ये ईश्वर-सदृश पुरुष, अपना स्वरुप जन साधारण से गुप्त रखते हुए भी अपना कार्य कर जाते और किसी को किसी प्रकार का संदेह करने का प्रयोजन भी नहीं होता। परंतु; एक दिन, घटना क्रम से, अपने एक विश्वस्त नौकर की पकड़ में आ ही गये।

भृत्य यह जानता था कि सन्ध्या के समय उसके मालिक, प्रायः समुद्र-तट पर कुछ समय व्यतीत कर आते है। एक दिन होटल में कोई विशेष प्रयोजन होने के कारण, भृत्य, अपने मालिक की खोज में, समुद्र तट की ओर निकल पड़ा।

इधर हमारा होटल वाला तट पर पहुंच कर, वायु सेवन करने वालों से कुछ दूर, आसन लगा कर बैठा हुआ था। शरीर पर का कौपीन किसी तरह अलग हो पड़ा था और इसका उन्हें होश भी नहीं था। थोड़ी ही देर में समुद्र की एक तरंग तट पर से कौपीन को वहा ले गयी। जब मालिक का ध्यान भंग हुआ, नौकर उनके पीछे तक आ गया था।

देह–ज्ञान वापस आने पर उन्हे आभास हुआ कि कौपीन नहीं है। उनके खोले हुए बाकी कपड़े, यथास्थान पड़े थे। कौपीन न देख कर वे कह उठे, मेरा कौपीन ? मेरा कौपीन कहां है ?

उसके बाद उन्होंने जोर से पुकार कर कहा, मेरा कौ···पीन कहाँ है ?

इस आह्वान के साथ ही साथ, एक विचित्र काण्ड हो गया। सागर की एक विशाल तरंग, किनारे से आकर टकराई। लहर, जब वापस गयी तो उनका कौपीन उनके चरणों के पास रखा पड़ा था।

समुद्र ने कौपीन वापस लाकर रख दिया था।

चारों ओर चीख-पुकार सुनकर, होटल वाला, इधर-उधर देखने लगा। उसी समय उनकी नजर पास ही खड़े भृत्य पर पड़ी। उन्होंने, उससे पूछा कि मामला क्या है ? इतनी चीख-पुकार किस लिये ?

भृत्य ने उत्तर दिया कि एक भयानक काण्ड हो गया है। अकस्मात्, समुद्र की एक उत्ताल तरंग आयी और जो भी तट पर बैंठे हुए थे, उन्हें डुबो कर ले गयी।

—समुद्र डुवा ले गया है ? उन्होने प्रश्न किया। जब उन्होंने आसन ग्रहण किया था, तभी देखा था कि यत्र -तत्र अनेक नर-नारी तथा बच्चे, सुख पूर्वक बैठे हुए थे। कम से कम सौ-डेढ़ सौ लोग तो अवश्य ही होंगे। उनमें से अधिकांश, इस आकस्मिक तरंगोच्छ्वास में डूब गये हैं। जो लोग बच गये थे, उन्हीं का क्रन्दन एवं चीत्कार इस समय सुनायी पड़ रहा था। उन्होने देखा कि एक माँ, अपने बालक पुत्र के शोक में छाती पीट कर रो रही है।

उसी आसन पर वे फिर सँभल कर बैठ गये। इससे पूर्व उन्होंने कौपीन के लिये प्रार्थना की थी। अब उन्होंने दाहिना हाथ उठा कर समुद्र को आदेश दिया कि जिसे भी ले गये हो, उसे वापस कर जाओ। तुम सभी, इसी क्षण जीवित हो उठो—

समुद्र ने इस आदेश का पालन किया। पूर्ववत्, एक विशाल तरंग उठी और तट से आकर टकराई। पानी के खिसकते ही दीख पड़ा कि सभी को समुन्द्र यथास्थान रख गया है। बहुत पहले ही मृत, कितनी मछलियों की हड्डियाँ समुद्र की तलेटी में पड़ी थी। इस अमोघ आदेश के फलस्वरुप, उन्हें भी जीवन दान मिल गया इन श्रेष्ठ ब्रह्मविद के लिये यह विराट सृष्टि भी हस्तामलकवत् थी। मात्र पांच वर्ष ही हुए, इन्हें शरीर त्याग किये हुए।

जिनकी बात मैंने आपको सुनायी, उनके वारे में जन साधारण

को कोई जानकारी नहीं थी । परिचित लोगों में तैलंग स्वामी भी इस तरह का काण्ड कर गये हैं । साधु-महापुरुषगण भी, उन्हें शिव-सदृश कह कर मान्यता देते थे । मद्रास के होटल वाले ने समुद्र को आदेश दिया था, तथा तैलंग स्वामी ने हिमालय के एक पर्वत खण्ड को आदेश दिया था ।

जन-साधारण में यह बात प्रचलित थी कि काशी में दो शिव अवस्थित हैं—एक अचल शिव, विश्वनाथ मंदिर में, तथा दूसरे सचल शिव, तैलंग स्वामी । युगावतार रामकृष्ण ने इन्हें साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा था, देखा स्वयं विश्वनाथ इनके शरीर पर अधिकार किये हुए विराजमान हैं ।

जिन दिनों का जिकर है, उस समय तक स्वामीजी ने, स्थायी रुप से काशी में निवास करना आरंभ नहीं किया था । हिमालय के बद्री-केदार मार्ग पर, एक पत्थर पर चित लेटे हुए हैं । इसी समय कई व्यक्तियों के बातचीत की आवाज उनके कानों में पड़ी । चार साधु-सन्यासी, बद्री नारायण के दर्शनार्थ, निकले हुए थे । दिन भर पैदल रास्ता तय करते हुये, वे वहाँ तक पहुँच पाये थे । सामने ही एक पहाड़ गिर पड़ा,था जिसे पार कर के ही आगे जाना होगा । शरीर अवसन्न हो चुका है, तथा नजदीक कोई चट्टी भी नहीं है, जहाँ आश्रय ग्रहण किया जा सके । पहाड़ी को पार करने में कई घंटे लग जायेंगे, और यदि घूम कर जाना होगा, तो और अधिक समय लग जायगा । पहाड़ की तलेटी में खड़े साधु-गण, बातचीत कर रहे थे । एक ने कहा, घूम कर जाना अच्छा होगा, चढ़ाई चढ़ने की क्षमता, अब नहीं है ।

दूसरे ने कहा,पहाड़ यदि समतल होता, तो एक दिन का रास्ता

सीधा चलकर, एक घंटे में ही समाप्त हो जाता।

तीसरे ने कहा, जब यह सुविधा सुलभ नहीं है, तो क्या करना है इस पर विचार कर लें।

साधुओं के क्लान्त स्वर से स्वामी जी के मन में करुणा का उद्रेक हुआ। उसी लेटी हुई अवस्था मे ही, उन्होने बाँया हाथ उठाकर आदेश दिया, ऐ, नीचा हो जा। साथ ही साथ, साधुओं की आंखों के सामने ही पहाड़ अपना मस्तक अवनत करके, धीरे-धीरे नीचा हो गया; जिससे उनके विस्मय की सीमा नहीं रही। यह आश्चर्यजनक काण्ड किस तरह घटित हुआ, यह भी उन लोगों को ज्ञात नहीं हो सका। आज भी बद्री-केदार मार्ग पर, पहाड़ उसी तरह माथा नीचा किये हुए खड़ा है।

ऋषिगण ने कहा, हे सूत, आपने जिस कहानी का वर्णन किया, उसे सुन कर महर्षि अगस्त्य के विंध्य-पर्वत-शासन की बरबस याद आ जाती है। कलिकाल में भी ऐसी तपः शक्ति वर्त्तमान है, यह हम लोगों की कल्पना से परे था।

इसके बाद सूत ने नैमिषारण्य-वासी ऋषियों से जिज्ञासा की, कि अब किस-किस विषय में आप लोगों को जानने की अभिलाषा है, आज्ञा करें।

ऋषिगण ने कहा, हे सूत, हम लोगों को अभी बहुत सी जानकारी करनी है, उसे क्रमशः हम लोग बताते हैं।

सूत—जब बहुत से विषयों पर एक साथ प्रश्न करना संभव नहीं है, तब एक-एक प्रश्न आप पूछते जाँय और मैं बारी-बारी से उसका उत्तर देता जाऊँ।

ऋषिगण—हे सूत, अबतक आपने जिस कई अलौकिक कहानियों का श्रवण कराया है, उन्होंने हमें मात्र विस्मित ही नहीं, सोचने पर भी बाध्य किया है।

सूत—आप लोग, अपने विस्मय एवं विचार इन दोनों का कारण

वताने का कष्ट करें। मैं यथासाध्य आपके प्रश्नों का समुचित उत्तर देने का प्रयास करूँगा।

ऋषिगण—हमारे विस्मय का कारण यह है कि घोर कलि का प्रकोप चल रहा है, इस समय भी इस तरह की घटना घट सकती है, यह सोच कर हम लोग विस्मित हो रहे हैं।

सूत—कलियुग भी, इश्वर-वर्जित-युग तो है नहीं, एवं कलिकाल में कोई ईश्वर-साक्षात्कार का लाभ नहीं करेगा, ऐसा कोई नियम है क्या ?

ऋषिगण—नहीं, ऐसा नहीं है। कलिकाल में भी ईश्वर प्राप्त वहुत से महापुरुषों का आविर्भाव हुआ, एवं अभी और लोगों का आविर्भाव होगा, यह हम जानते हैं।

सूत—ईश्वर–जनित पुरुषों को शास्त्रों में ईश्वर सदृश ही कह कर उल्लेख किया गया है। ईश्वर को जान लेने पर, ईश्वर की शक्ति भी स्वभाविक नियमों से अर्जित हो जाती है।

ऋषिगण—आपकी यह उक्ति क्या ब्रह्मज्ञ व्यक्तियों के लिये ही प्रयोजनीय है।

सूत—हाँ, मुक्त पुरुष मात्र के संवन्ध में यह उक्ति सत्य है। आलोकहीन सूर्य कदाचित् संभव हो सकता है, परन्तु शक्तिहीन ब्रह्मज्ञ की कल्पना असंभव है। इस विषय में सूर्य और ब्रह्मज्ञ के वीच एक विषम पार्थक्य है—सूर्य, कभी भी अपनी ज्योति समेट लेने में समर्थ नहीं है, परन्तु ब्रह्मज्ञों में इतनी क्षमता होती है कि वे अपनी शक्ति को समेट कर रख सकते हैं, जिससे उन्हीं जैसे लोगों के अलावा किसी के लिये भी उनका वास्तविक परिचय जान पाना संभव नहीं है। शक्तिमान साधक को प्रायः ही जन-साधारण पहचान लेता है,परन्तु ब्रह्मज्ञ को पहचान लेने की क्षमता का साधारण लोगों में सर्वथा अभाव है। उनकी अगर स्वतः इच्छा नहीं होती है, तो उनके स्वरुप का वास्तविक परिचय कभी व्यक्त नहीं

होता, यह आप लोग जान लें । इसी कारण श्रेष्टतम सिद्ध-पुरुष, जन-साधारण के लिये अज्ञात ही रह जाते हैं । जो विशेष अधिकार या 'मिशन' लेकर आते हैं, उनकी बात अवश्य ही इससे भिन्न है । अब आपलोग कृपया अपनी शंकाओं को खोलकर कहें ।

ऋषिगण—हम यही सोच कर भ्रमित हो रहे हैं कि इन अलौकिक घटनाओं का उद्देश्य एवं सार्थकता क्या है ?

सूत—आपने अच्छा प्रश्न उठाया । सामान्य जन का अलौकिक बातों पर जितना विश्वास हो जाता है, वह साधारण से नहीं होता । सभी, कमो-बेश, इस धारणा का पोषण तो अवश्य करते हैं कि ईश्वर हैं । वास्तविक रुप में जो विश्वासी हैं, ईश्वरानुसंधान के लिये उन्मुख रहते हैं,तथा इस तरह की अलौकिक घटनाएँ उनकी चेतना को और अधिक जाग्रत कर डालती है । इन्द्रिय-ग्राह्य, प्रकाशित दृश्य, जगत एवं संसार से परे एक अलौकिक अस्तित्व के संबन्ध में उनकी निष्ठा एवं विश्वास को और दृढ़ कर देता है । आप लोगों के समक्ष और अधिक कहना, आवश्यक नहीं है । मनुष्य, देह-बद्ध जन्म-मृत्यु-चक्र में आवर्त्तित जीव मात्र ही नहीं, वह तो शिव है—इसी स्मृति को इस तरह की अलौकिक घटनाएँ, जीव की चेतना पर विद्युत-स्वरुप झांकी देकर चली जाती है । इसके फल-स्वरुप, जीव के अंतर्मानिस में, उससे अज्ञात रुप से ही, शिव-स्वरुप में वापस जाने की प्रेरणा क्रियाशील रहती है । इसके अलावा, लोक अनुग्रह के निमित्त भी, ये सब अलौकिक घटनाएँ घटित होती रहती है ।

ऋषिगण—प्रसंगतः, हम आपसे एक प्रश्न करना चाहते हैं ।

सूत—एक क्यों, आप अनेक प्रश्न करने को स्वतंत्र हैं ।

ऋषिगण—इन अलौकिक घटनाओं में क्या कलिकाल के लोग, विश्वास भी करते हैं ?

सूत—कोई-कोई करते हैं, तथा कुछ नहीं भी करते । हर काल

में आस्तिक तथा नास्तिक, दोनों तरह के लोग विद्यमान रहते हैं। इस विषय में चारो युगों में कोई पार्थक्य नहीं है।

ऋषिगण—अब आप मूल विषय पर वापस आयें, यही हमारी अभिलाषा है।

सूत—मूल विषय से आपका तात्पर्य क्या है, यह नहीं बताने पर मेरे लिये उस पर आना कैसे संभव है?

ऋषिगण—भगवान वेद-व्यास के इस बार के बंगाली शरीर में जिन लीलाओं का वर्णन कर रहे थे, वही हम लोगों का अभिलषित मूल विषय है। इस बार बंगाल ही उनकी लीला भूमि है, अब तक आप हम लोगों के समक्ष इसका वर्णन करते रहे हैं।

सूत—मेरा नाम उग्रश्रवा है अवश्य, परन्तु देखता हूँ, कि स्मृति के विषय में आप लोग भी उग्रस्मृति ही हैं। आप लोगों को इतना अधिक कैसे याद रह जाता है, यह सोचकर मैं विस्मित हो जाता हूँ। जो भी हो, आप प्रश्न करें। प्रश्न, सूर्य-ताप सदृश है। मन में जितनी भी कथा एवं कहानी, गिरिशिखर पर तुषार सदृश जमी रहती है, वह गल कर शब्दों के धारा पथ के माध्यम से मुक्ति पा जाती है। सुतरां, प्रश्न करके, मुझे वक्तव्यों के बोझ से मुक्ति दिलाने में सहायता करें।

ऋषिगण—आपकी संगत प्रार्थना को पूर्ण करने हेतु, हम सर्वदा प्रस्तुत हैं। परन्तु, प्रश्न तो सभी कर लेते हैं, लेकिन सदुत्तर कितने लोग दे पाते हैं?

सूत—समझ गया। वक्ता के रुप में मेरे अंतर्मन में एक गुप्त गर्व छिपा हुआ था, परन्तु आप लोगों की वक्तृता-शक्ति के दर्शन कर, वह काफी हद तक शमित हो गया है। कृपया बतावें कि आप क्या पूछना चाह रहे थे?

ऋषिगण—सर्व प्रथम, आप हम लोगों को यह बतावें कि इस शरीर में व्यास देव किस नाम से परिचित हैं?

सूत—इस शरीर में ये 'बंधु' के नाम से परिचित हैं।

ऋषिगण—बंधु ! किसके बंधु ? जो स्वयं भगवान वेद-व्यास को बंधु कह कर संबोधित कर सके, वास्तविक रुप में ऐसा मनुष्य क्या है ?

सूत—जी हाँ, हैं ।

ऋषिगण—वे कौन हैं ?

सूत—वे वही हैं, जिनके लिये स्वयं वेद-व्यास बंगाली शरीर ग्रहण करने को बाध्य हुए हैं।

ऋषिगण—हे सूत, हम लोगों का विस्मय एवं कौतूहल आप इतना अधिक बढ़ाते जा रहे हैं कि हम लोगों के लिये धैर्य धारण करना असंभव हो रहा है । आप शीघ्रातिशीघ्र, उस व्यक्ति के विषय में जो कुछ जानते हैं, हम लोगों को ब्योरेवार बताने का कष्ट करें ।

सूत—परन्तु, आप लोगों को एक शर्त का पालन करना होगा।

ऋषिगण—कृपया, अपनी उस शर्त से हम लोगों को अवगत कराने का कष्ट करें।

सूत—मैं जिस कहानी का वर्णन करने जा रहा हूँ, उसमें कलि-युग में व्यवहृत, परन्तु आप लोगों के लिये दुर्बोध एवं अज्ञात, अनेक शब्द एवं वस्तुओं का उल्लेख रहेगा, फिर भी उन सब विषयों की व्याख्या, परिचय इत्यादि, आप लोग नहीं पूछेंगे। आप लोग, मात्र श्रवण करते रहेंगे, यही मेरी शर्त है। ऋषिगणों की ओर से कुल-पति शौनिक ने उत्तर दिया। हे सूत, आप आश्वस्त हों, इस शर्त की रक्षा हेतु, हम लोग पूरी चेष्टा करेंगे एवं सजग रहेंगे । आपने ब्रह्मविद की कहानी कहते समय, कई बार 'होटल वाला' शब्द का प्रयोग किया था। शब्द का अर्थ अज्ञात होते हुए भी हम लोगों ने उस विषय में आपसे एक बार भी पूछ-ताछ नहीं की ।

सूत—संयम ही आप लोगों का स्वभाव है, इससे कौन अवगत

नहीं है। देवताओं के लिये तो दूर की बात, देवर्षिगण पर्यन्त, आप लोगों की संयम शक्ति से ईर्ष्या करते हैं। कृपा करके, इस समय का परिचय आप लोग अंत तक देंगे, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। सद्-गुरु भगवान वेद व्यास एवं देवी सरस्वती को नमस्कार करके, मैं आप लोगों की आज्ञा पालन हेतु व्रती हो रहा हूँ। मेरे बुद्धि-मालिन्य को दूर करें, एवं जिह्वा के जड़त्व का भी मार्जन करें।

सूत उवाच—

१६४० साल का ज्येष्ठ मास है। सूर्य मध्याह्न के शिखर से पश्चिम की ओर ढलता जा रहा है। कलकत्ता के डलहौजी स्क्वायर में एक बैंक के आफिस में, एक प्रौढ़ भद्र पुरुष ने प्रवेश किया। बैंक में अधिक लोगों का आना-जाना नहीं है। यह देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि बैंक बन्द होने की स्थिति में आ गया है। अर्थात्, बैंक के दिवालिया हो जाने में अधिक विलम्ब नहीं है।

छोटी उमर का एक छोकरा, चपरासी वाले स्टूल पर चुपचाप बैठा है। उन सज्जन ने उससे पूछा—क्या मैनेजर बाबू अन्दर हैं?

—नहीं, वे बाहर गये हुये हैं।

नित्य ही निकल जाते हैं, अच्छी विपत्ति में पड़ गया हूँ। अन्दर कौन है?

छोकरे ने जवाब दिया, सुपरिन्टेन्डेन्ट बाबू हैं।

—ठीक है, सुपरिन्टेन्डेन्ट बाबू ही सही। किस तरफ हैं, मुझे बता दो।

चलें, कहता हुआ, बेयरा स्टूल छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। एक कमरे के सामने आकर हैन्डिल खीच कर उसने कहा, जाइये, इसी घर के अंदर हैं।

वे सज्जन अन्दर घुसे और भारी दरबाजा अपने आप ही, निःशब्द, बन्द हो गया।

एक विशाल टेबुल पर झुके हुए, सुपरिन्टेन्डेन्ट कुछ कागज पत्र देख रहे थे। उन्होंने आंख उठा कर देखा । प्रौढ़ सज्जन ने, कुर्सी खीच कर, अपना आसन ग्रहण किया ।

—सुना, मैनेजर बाहर निकल गये हैं, कब वापस आवेंगे ?

—अब वे वापस नहीं आवेंगे, कोई विशेष कार्य है क्या ?

—कोई कार्य नहीं होता तो नित्य एक बार क्यों आता ? परन्तु नित्य ही सुनता हूँ कि वे बाहर निकल गये हैं ।

—क्या कार्य है, मुझसे कहें ।

इस बार पौढ़ सज्जन ने, सामने बैठे हुए व्यक्ति को खूब अच्छी तरह देखा । बलिष्ठ शरीर तथा रंग अत्यन्त साफ, दीर्घ एवं तीक्ष्ण नासिका तथा ऊपर के होठ बहुत पतले एवं दबे हुए । आखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा पड़ा है, तथा सिर एकदम गंजा ।

प्रौढ़ ने आक्रोश भरे स्वर में कहा, ठीक है, आपसे ही कहता हूँ। मुझे और कितने दिनों तक वापस लौटना पड़ेगा ? कृपया मेरे पैसों की व्यवस्था करें ।

एक अन्य भद्र पुरुष, कब दरवाजा ठेल कर अंदर घुस आये हैं, इसका दोनो में किसी को भान नहीं हुआ । आगन्तुक आकर, निःशब्द, प्रौढ़ व्यक्ति के पास वाली कुर्सी पर बैठ गये । प्रौढ़ व्यक्ति को उनकी उपस्थिति का ज्ञान हुआ या नहीं, यह भी समझ में नहीं आ सका ।

कालीकिंकर बाबू ने उत्तर दिया, अभी हम लोग रुपया दे नहीं पायेंगे । हम लोग इस प्रतिष्ठान को पुनर्जीवित करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस कार्य में आप लोगों की सहयोगिता प्रयोजनीय है। ऐसा न होने पर, इसे फिर खड़ा कर पाना संभव नहीं हो सकेगा ।

दोनों के बीच, कुछ देर तक बातचीत चलती रही । फिर वे सज्जन, कुर्सी से उठ खड़े हुए और कहा, अब जाऊँ । मैनेजर से कह देंगे कि मैं आया था। अच्छा, क्या आप सचमुच आशा करते

हैं कि बैंक को बचा पाना संभव हो सकेगा ?

—हम लोग चेष्टा तो जी जान से कर रहे हैं, परन्तु अन्ततः उद्धार होगा या नहीं, यह कहना कठिन है।

—नहीं, नहीं, घबराइयेगा नहीं। भरसक प्रयत्न कीजिये। यदि चेष्टा के बावजूद, कार्य में सफलता नहीं मिली तो आप लोगों को कम से कम संतोष तो होगा, और मुझे भी सांत्वना मिलेगी कि सच्चे आदमी की सब चेष्टा के बावजूद बैंक फेल हो गया। नहीं, आप लोग घबराइयेगा नहीं।

लाठी पकड़े हुए, हाथों को सिर से छुलाकर नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा, फिर चलूँ ? यदि मेरी तरफ कभी आने का अवसर मिले तो घर में आपकी पद्धूलि पाकर बड़ी प्रसन्नता होगी।

शांत चित्त होकर, प्रौढ़ व्यक्ति घर से बाहर निकल गये।

अब काली किंकर बाबू ने, सामने बैठे हुए व्यक्ति की ओर मुखातिब होकर पूछा—आपका क्या करेंट है या फिक्सड् ? कहते, अपरिचित व्यक्ति के नेत्रों की ओर देखते हुए वे विस्मित हो उठे। कैसे नेत्र हैं तथा कैसी आश्चर्यजनक दृष्टि ! आश्चर्य की बात यह है कि उनके हृदय में यह कैसा अद्भुत आनन्द चक्रावात् उद्दीपन जगा रहा है !

आगन्तुक ने शांत स्वर में कहा, आप यहाँ क्यों हैं ?
किसी तरह कालीकिंकर बाबू, इतना ही पूछ सके—क्यों ?

—आपका स्थान तो यहाँ नहीं है।

—यहाँ मेरा स्थान नहीं है ?

—नहीं। अपने स्थान पर कब वापस जाँयगे ? अब और कितना विलम्ब करेंगे ?

—काली किंकर बाबू ने मानो आर्त कण्ठ से इतना ही प्रश्न किया, आप कौन हैं ? कौन हैं आप ?

# कोई कोई भाग्यवान समझ पाया

कलकत्ता और काशीधाम में सर्वसाधारण के 'गुप्त योगी' के नाम से परिचित श्री श्री कालीपद गुहा राय ही भारतवर्ष के उच्च-कोटि के साधु समाज एवं ब्रह्मविदों में 'योगीश्वर' नाम से प्रतिष्टित थे। पचीस वर्ष या उससे भी अधिक समय से लेखक ने उनके आश्रय तथा साहचर्य में उनकी अलौकिक शक्तियों का अजस्र परिचय प्रत्यक्ष देखा है, तथा उनके समीप रहकर साक्षात् रुप से जाना है । इसके अलावा, उनके कृपा प्राप्त बहुत से व्यक्तियों के मुख से उनकी कृपा लीला की अनन्त घटनाएँ सुनी है। इसी संदर्भ में कुछ तथ्य यहाँ लिपिबद्ध है ।

ब्रह्मज्ञ समाज के अन्यतम दिक्पाल तथा योग और तत्व युग्म-रश्मियों के आश्रय स्थल, महासाधक राम ठाकुर ने 'योगीश्वर' के संबन्ध में अपनी अंतरंग गोष्ठी में कहा था, "नश्वर शरीर में ऐसी वस्तु का कभी अवतरण नहीं हुआ था। वस्तुत: श्रेष्ठतम ऋषि शक्ति और ब्रह्मशक्ति का पूर्णतम प्रकाश इन महात्मा के महाजीवन में प्रकट हुआ था। उनके पुण्य संग के अभिलाषी होकर बहुत सिद्ध साधु, महात्मा उनके पास उपस्थित होते थे, यह मैंने देखा है। कोई-कोई तो उच्चतम योग मार्ग की निगूढ़तम साधन कृपा ग्रहण करने आते थे । इनमें से किसी-किसी के समीप मुझे श्री श्री गुहाराय की कृपा लीला की कहानी सुनने का सौभाग्य मिला है । मैंने देखा है

कि ये महात्मा श्री गुहाराय को ईश्वर तुल्य समझते थे, तथा कोई उनको योगीश्वर महर्षि याज्ञवल्क्य का अवतार कह कर कीर्तन करते थे।

श्री श्री गुहाराय के घनिष्ठ सानिध्य में जो भी आये हैं, वे सभी जानते हैं कि स्वयं वे कितनी तत्परता से प्रचार विमुख थे। इसलिए इन ईश्वर कल्प की व्यापक जीवन कहानी देना तो संभव नहीं ही है, और बोध होता है समीचीन भी नहीं ।

उनके महाजीवन में भगवत्ता का महाप्रकाश ही मुझे अधिक दृष्टिगोचर हुआ है। इस महाप्रकाश को प्रकाशित् करने की शक्ति मुझमें नहीं है। इसलिए उनकी अनन्त कृपा लीलाओं की कहानियों में से दो चार कहानियों का चयन करके संक्षेप में मैं यहाँ लिख रहा हूँ ।

१९४७ साल में ४७/१ सी, श्याम पुकुर स्ट्रीट वाले मकान में श्री श्री कालीपद गुहाराय सपरिवार वास करते थे। पृथक मकान में रहने के बावजूद, उस समय उनका यही घर कार्यतः मेरा भी वास स्थान हो गया था।

तब लगभग ११ बजे थे! जिज्ञासु तथा दर्शनार्थी, प्रायः सभी ने विदा ले ली थी। एक तल्ले पर बैंठक में श्री युक्त कालीदा के सामने बैठा था, मैं तथा दास महाशय। दास महाशय अभिनय तथा संगीत जगत् के एक सुपरिचित व्यक्ति हैं, तथा कालीदा की अजस्र कृपा भी उन्होंने पायी है।

जब तक वे दादा के सम्मुख बैठे रहते हैं, हाथ जोड़कर तथा अर्धनिमीलित नेत्रों से ही बैठते हैं। उनकी भक्ति तथा श्रद्धा निश्चय ही अपरिसीम है।

कालीदा ने काफी समय तक ग्रामोफोन कंपनी तथा सिनेमा जगत् पर आक्षेप किया। यह सब कहकर किसी तरह दास महाशय को उत्तेजित करना ही उनका लक्ष्य था। किंतु उनका सारा परि-

श्रम निश्फल गया। ऐसा लगता था कि सारी बातें दास महाशय के शरीर पर लग कर फिसलती जा रही हैं। हाथ जोड़े, माथा नीचे कर भक्ति भरे स्वर में उन्होंने कहा, प्रभु, जो आपने कहा वह यथार्थ, है—इसमें और संदेह क्या है ?

'धत् महाशय,' श्री युक्त कालीदा गरज उठे। बोले, 'आपके साथ कोई आलोचना, कोई तर्क बितर्क करने का कोई उपाय ही नहीं है। ठहरिये, ११ बज गये हैं, कई पत्र लिखकर समाप्त करने हैं। आप और प्रमथ बाबू इधर-उधर की चर्चा करते हुए यहीं रुकें। चाय की आवश्यकता होने पर रेवा से कहेंगे।

मेरी ओर देख कर कहा, "जरुरी चिट्ठी है, समझे ? समाप्त करना ही होगा। इस समय भक्त-वक्त अगर आवें तो मुझे डिस्टर्ब न करेंगे।" उसके बाद खड़ाऊ पांव में डाल कर सशब्द खट्खट् करते हुए दुमंजिले पर चले गये।

अब दास महाशय सहज और स्वाभाविक अवस्था में आकर कुर्सी पर बैठ गये। शांत स्वर में उन्होंने कहा, 'प्रभु की इधर-उधर की चर्चा वाली बात तो अच्छी है, परन्तु।

मैंने हंस कर उत्तर दिया, उनका मंतव्य यह था कि यहाँ आकर तर्क-वितर्क, हो हुल्लड़ करें, चाय पान करें। परम प्राप्ति ? यह भावना लेकर माथा खराब करने से कोई लाभ नहीं है। उसका 'कन्सेन्ट्रेटेड पिल' हम लोगों के पास ही तो है।

दास महाशय हो हो कर के जोर से हंस पड़े। उसके बाद धीमें स्वर में वोल पड़े, "अब मेरी व्यक्तिगत बात पर आयें। प्रभु आजकल मुझसे बहुत बहाना बना रहे हैं।"

इस समय दास महाशय की बात संक्षेप में कह देना उचित होगा। इनको यहाँ हम लोग दास महाशय के नाम से ही संवोधित करेंगे। नाना कारणों से पूरा नाम देना संभव नहीं है। किसी समय ये घोर मद्यप तथा यौन संवन्धो के प्रति काफी लापरवाह थे।

इस समय श्री युक्त कालीदा के कृपा स्वरुप, इनकी परिणति सात्विक प्रकृति के साधक के रुप में हो गयी है । दास महाशय स्वयं विख्यात व्यक्ति हैं तथा उनके पुत्र का भी अभिनय जगत में यथेष्ट नाम है। इसी कारण उनका नाम गुप्त रख कर, पदवी से ही यहाँ संबोधित किया जा रहा है ।

दास महाशय से मैंने प्रश्न किया, "दादा आजकल टालमटोल ( फाँकी )कर रहे हैं, यही तो आप कह रहे थे ?"

"हाँ, वेतरह फाँकी" । पहले स्नान-तर्पण करके प्रभु के फोटे के सामने बैटने पर वे फोटो से वाहर निकल कर मधुर हॅसी हँसते थे। कितना निर्देश, उपदेश देते थे । इन दिनों, यह सब मैं नहीं पा रहा हूँ । फिर ?

मैंने उत्तर दिया, 'इतने दिनों तक तो आप आध्यात्मिक जगत में शिशुवत् अवस्था में थे। इसीलिए दादा को फोटो के भीतर से आना पड़ता था । विश्वास जगाने के लिए ही भगवत् कल्प पुरुष को आत्म प्रकटन करना पड़ता था । इस समय अपने दास महाशय स्वयं कृतविद्य हो गये है, तभी तो, आजकल दादा की पहले जैसी मूर्त्ति के आविर्भाव का कोई प्रयोजन नहीं है ।'

'हंसी छोड़ें अभी ! कितना पाखंडी मैं था यह तो मैं स्वयं जानता हूँ। प्रमथ दा, दिन-रात में तीन-चार घंटा भी मद्य के बिना नहीं रह पाता था, पागल हो जाता था । दो वर्ष पूर्व,इसी घर में, तथा इसी कमरे में सोमदा के साथ आकर मैंने प्रभु का दर्शन पाया ।कृपा भी पाई। पाखंडी का उद्धार न होने पर,भगवान का स्वरुप तो प्रकट होता नहीं ! इसी से समझता हूँ कि उद्धार के निमित्त ही आगे आये, मेरे भगवान, मेरे प्रभु ! तीन–चार घंटे तक मुझ महा पातकी के साथ बैठे रहे । उसके बाद जिस समय बिदा ले रहा था, वज्र जैंसे कठोर स्वर में उन्होंने धमकाते हुए कहा, 'जाइये महाशय, और वह सब राख-भस्म नहीं खाइयेगा । असहाय जैसा मैं प्रभु के चरणों में

लोट पड़ा। कातर कण्ठ से मैने कहा, 'प्रभु, मैं तो अब असहाय सा हूँ। पहले मैं नशाखोर था, आज नशा मुझे स्वयं खा रहा है। आपका यह आदेश क्या मैं अक्षरशः पालन कर सकूँगा ?'

क्रुद्ध स्वर में वे बोल उठे 'मेरा प्रेम जो पाता है वह कर सकता है, और वह सभी पाते हैं। जाइये और वह सब राख-भस्म खाना नहीं होगा।'ठीक वही घटा। मद्य मुझे और नहीं सेवन करना पड़ा। प्रभु द्वारा प्रताड़ित होकर, मद्य की तृष्णा जैसे समाप्त ही हो गयी। उसके बाद जीवन से अन्य गर्हित आकर्षण भी दूर हो गये। मैं घोर-तर पापी और नरक का कीट था। उसी समय से मैं नूतन मनुष्य हो गया। तबसे ही उनको 'प्रभु' कह कर संबोधित करता हूँ, और अपने सभी कर्म, इन प्रभु के चरणों में ही समर्पित करके निश्चित होकर बैठा हूँ।'

यहां, यह उल्लेखनीय है कि श्री युक्त कालीदा को उनके सभी भक्त तथा शिष्य, दादा कह कर पुकारते हैं, एक अपवाद यही दास महाशय ही हैं। 'प्रभु' छोड़कर उनके लिए और कोई संबोधन था ही नहीं।

'फिर प्रभु आजकल जो फोटो से बाहर नहीं आते हैं, उसका कोई निग्रह तो नहीं ? क्या आप ठीक कहते हैं ?' दास महाशय ने प्रश्न किया।

''मैंने तो पहले ही कह दिया है। इसे आप विशेष अनुग्रह ही समझ सकते हैं। साधना सोपान पर आप बालक वय को पार कर गये हैं। अलौकिक रुप से दादा को आपके सामने जाने का और अधिक प्रयोजन नहीं है।''

हठात् हम लोंगों की बातचीत में विघ्न पड़ गया। कमरे के भीतर एक आगंतुक आ गये। उन्होंने प्रश्न किया, 'देखिए, काली-पद गुहाराय क्या इसी मकान में रहते हैं ?'.

'हाँ, यही उनका मकान है,क्या चाहते हैं,आप ?'मैंने प्रश्न किया।

'दया करके उन्हें जरा बुला दें ।'

'इस समय उन्हें बुलाना संभव नहीं है। इस समय यहाँ से वे ऊपर चले गये हैं, कार्य व्यस्त हैं, अभी नीचे नहीं आवेंगे।

'आप उनसे कहें मेरा नाम हेमन्त सिकदार है। घर रंगपुर है। मैं उनके कालेज जीवन का मित्र हूँ।'

ऊपर जाकर मैंने श्री युक्त कालीदा को सूचना दी। सुनते ही उत्साह पूर्वक वे बोल उठे, 'उसे चाय इत्यादि दें, और बातचीत करें। यह पत्र समाप्त कर मैं आ रहा हूँ । और हाँ, उससे यह नहीं कहेंगे कि मैं धर्म- वर्म के काम में लगा हूँ।'

मैंने कहा 'दास महाशय को उनके पास छोड़ आया हूँ । इस अवधि के भीतर क्या 'प्रभु'कहकर दो-चार वार भी आपका उल्लेख उन्होंने नहीं किया होगा ?

'जल्दी ही आप वहाँ चले जाँय और दास महाशय को बिदा कर दें

इस आदेश का पालन हुआ । कुछ क्षण बाद ही कालीदा आकर उपस्थित हुए। दोनों मित्रों में कुछ समय तक कुशल क्षेम का आदान-प्रदान हुआ। उसके बाद, दादा ने अपने पूर्व परिचितों के विषय में अनेक प्रश्न शुरू किए। 'केलो बंधु,कालेज का हेड क्लर्क, शीर्णकाय प्रोफेसर जनार्दन राय,मुड़िवाला,संदेश विक्रेता-खेदू मयरा-कोई भी तो नहीं छूटा।

दरबाजे के बाहर से दादा और उनके बंधु हेमन्त सिकदार की वार्ता सुनने पर यही भान होता था, कि दो तरुण छात्र, कालेज का प्रसंग लेकर गप कर रहे हैं, और इस प्रसंग को छोड़कर उनके जीवन में और कोई काम ही नहीं है।

चाय समाप्त हो जाने के बाद हेमन्त सिकदार अपनी असली बात पर आये। 'भाई कालीपद, तुम्हारे पास मैं एक जरुरी कार्य लेकर आया हूँ ।

'क्या बोलो तो भाई।'

'मेरे एक फूफा हैं,मोहन लाल चौधरी, इलाहाबाद के एक प्रसिद्ध एडभोकेट । इलाहाबाद तथा लखनऊ, दोनों कोर्टों में उनकी प्रचुर प्रतिष्ठा है । उन्होंने हाल ही में एक अद्भुत चिट्ठी मुझे भेजी है । लिखा है, 'तुम्हें एक महत्व पूर्ण कार्य का भार दे रहा हूँ । मैं गत तीस वर्षों से, महात्मा प्रीतम दास बावा नामक एक योगी के परमाश्रय, में हूँ । उनके निर्देशानुसार, यथा साध्य योग और साधना भी कर रहा हूँ । प्रसंग वश बाबा ने मुझसे कहा है कि इसके वाद जो निगूढ़ कृपा मुझे प्राप्य है, उसे वे स्वयं देने में समर्थ नहीं हैं । यह मुझे कलकत्ता स्थित ब्रह्मज्ञ महात्मा के पास से लेना होगा । उन्होंने कहा है कि कलकत्ता के उन महात्मा का नाम है श्री श्री कालीपद गुहाराय । गृहस्थ आश्रम में रह कर भी ये योग सिद्धि के शिखर पर अधिष्ठित हैं । गुरुदेव ने इंगित किया है कि ये महात्मा, भगवान के नाम पर रख गये कलकत्ता के एक रास्ते पर रहते हैं । उन्होंने कहा है कि कलकत्ता के किसी परिचित को खबर करो, महात्मा के ठिकाने का पता मिल जायगा । मैं इन महात्मा के पास जाने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो गया हूँ । तुम अविलम्ब, इस विषय में खोज खबर लेकर पत्र भेजो, और उसी के अनुसार मैं कलकत्ता आऊँगा । आशा है, सपरिवार ही कुछ दिनों के लिये आऊँगा । मेरे पत्र को नितांत आवश्यक समझना । उपरोक्त महात्मा की खबर न मिलने पर, ऐसा भान होता है कि मेरे साधन जीवन में निष्फलता आ जायगी । इसलिए तुम यथोचित निष्ठा तथा तत्परता से मेरा यह कार्य संपन्न करो ।'

पत्र पढ़ना समाप्त हुआ । श्री युक्त कालीदा, अपने अभ्यास के अनुसार, अवतक कई सिगरेट शेष कर चुके थे । एक नया सिगरेट सुलगा कर उन्होंने हेमन्त बाबू से कहा, 'तो भाई, यह सब व्यापार लेकर मेरे पास क्यों आये ? केवल नाम एक जैसा होने से, तुमने सोच लिया कि मैं एक महात्मा हूँ । अरे भाई, सारा जीवन

स्वदेशी (आन्दोलन) में रहा, इधर-उधर रहा, पत्रकारिता की। साधन भजन के विषय में मुझे क्यों लपेटते हो।'

हेमन्त बाबू किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। धीमे स्वर में उन्होंने कहा, 'फूफा महाशय का पत्र पढ़ कर सोच रहा था। हठात्, ध्यान आया कि कलकत्ते में मेरे परिचित लोगों में कालीपद नाम के केवल तुम्हीं हो। केवल यही नहीं, तुम्हारा घर भी श्यामपुकुर स्ट्रीट में है। श्याम तो हम लोगों के भगवान ही हैं। यही भावना लिए सीधा तुम्हारे घर चला आया।

कुछ रुककर हेमन्त सिकदार ने कहा, 'इसके अलावा यहाँ आकर साधन-भजन की भी थोड़ी गंध मिली।'

'कैसे, साफ तो कहो, श्री युक्त कालीदा ने उत्सुक होकर कहा।

'तुम्हारे घर में जो सज्जन बैठे थे, वह बार-बार तुमको 'प्रभु' कह कर संबोधित कर रहे थे।'

'अरे भाई, वह सब कुछ नहीं है। मुझे तो तुमने कालेज लाइफ में भी देखा है, अभी देख रहे हो। गुरुगिरी करने लायक कुछ देख रहे हो क्या? तुम्हारा यह विचित्र व्यापार है।'—कह कर हो-हो करके कालीदा हँस पड़े।

हेमन्त सिकदार, चुपचाप विचार मग्न हो गये। फिर बोले,ठीक है, मैं चेष्ठा करुँगा, देखूँ इस पत्र के अनुसार सचमुच किसी महात्मा का पता पाता हूँ, या नहीं? इस विराट् कलकत्ता शहर में कहाँ खोज पाऊँगा, बोलो तो भाई? जो हो, पत्र द्वारा फूफा जी को मैं यह संवाद दे देता हूँ—कि 'एक काली पद गुहाराय को मैं जानता हूँ, वह मेरे मित्र हैं। फिर भी ऐसा नहीं लगता कि इतने दिनों में वह एक महान योगी बन गये हैं।'

आगामी रविवार को फिर आऊँगा, ऐसा कहकर हेमन्त बाबू विदा लेकर चले गये।

एक नया सिगरेट सुलगा कर, धुंआ खींच कर, कालीदा ने

कहा, 'अब सांस आयी। दास महाशय को पता नहीं है कि किस विपत्ति में उन्होंने मुझे ला पटका है।'

थोड़ी नीरवता के बाद उन्होंने कहा, 'हेमन्त अन्दाज से ही यहाँ आ गया था। ठीक ही आया था। फिर भी चटपट में पकड़ में नहीं आने का। इसका कारण भी है।'

अगला रविवार। रोहिनी बाबू, हेम सोम एवं मैं दादा के साथ बैठे हुए, अनेक प्रसंगों पर विचार-विमर्ष कर रहे थे। ऐसे ही समय में हेमन्त सिकदार का आविर्भाव हुआ। आते ही उन्होंने हल्ला-गुल्ला शुरु कर दिया। बोले, 'भाई कालीपद, तुमने मुझे अच्छा बेवकूफ बनाया। फूफा जी को जो पत्र लिखा था, उसका जवाब आया है। उन्होंने लिखा है, श्री गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुम्हारा कलकत्ते का रिश्तेदार खूब चतुर है, ठीक स्थान पर पहुँच गया है महात्मा का दर्शन उसने पाया है। अब कोशिश करो, जिससे उनकी कृपा हो।'

'हाँ, फूफा जी ने और भी लिखा है, 'गत तीस वर्षों से हम साधन प्राप्त लोगों का एक दल श्री गुरुदेव के संपर्क में है। वे उच्चकोटि के साधक तथा सिद्ध पुरुष हैं। उनको हम सभी अभ्रान्त ही समझते हैं। इसी कारण मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि तुम गुरुदेव द्वारा उद्दिष्ट महात्मा श्री श्री कालीपद गुहाराय के अन्वेषण में सफल हो गये हो! अब तुम उनसे पूछकर यह सूचना दो कि कब वे मुझ पर कृपा करेंगे? मेरी इच्छा यही है कि आगामी सप्ताह घर के सभी लोगों के साथ कलकत्ते के लिए रवाना होऊँ। वहाँ लगभग एक मास रुकूँगा। पत्रोत्तर द्वारा सभी बातें विस्तार से लिखना।'

पत्र शेष होने पर हेमन्त सिकदार ने सप्रश्न दृष्टि से कालीदा की तरफ देखा। यही भाव था—'अबकी पकड़ में आये हो।'

इस बार कालीदा को स्वीकार करना पड़ा कि पत्र में जिस व्यक्ति की तरफ इंगित था, वे स्वयं हैं। बोले, 'देखो भाई हेमन्त,

कई वर्ष पूर्व अनायास हिमालय के एक योगी महापुरुष के पास मैंने कुछ साधना पायी है । तुम्हारे फूफा जी के गुरुदेव, प्रीतम दास महाराज को मैं जानता हूँ, व्यावहारिक भाव से नहीं, आत्मिक जगत् के सूत्र द्वारा । वे भी मुझे जानते हैं । जाओ, तुम इलाहाबाद, श्री चौधरी को लिख दो कि वे अपनी सुविधानुसार मुझसे मिल सकते हैं ।'

हेमन्त सिकदार कुछ अवाक् से हो गये । सबके अलक्ष्य उनके मित्र, कब, किस दैवी कृपा सरणी द्वारा योगशक्ति के शिखर पर चले गये हैं, फिर भी अपने को गुप्त ही रखा है । उनके वही अभिन्न मित्र अब पहले जैसे नहीं है, तथा साधारण मनुष्य की पकड़ के बाहर, एक भिन्न पुरुष हो गये हैं ।

चाय इत्यादि हेमन्त बाबू ने पीया, किंतु बाद में कुछ देर चुपचाप ही बैठे रहे । उसके बाद घर के भीतर कुछ अन्य अभ्यागतों के आने पर वे उठ पड़े । जाते-जाते उन्होंने कहा, 'अच्छा भाई कालीपद, फिर इलाहाबाद उनको पत्र लिख दूँगा ।'

कुछ दिनों बाद की बात । एडवोकेट मोहन लाल चौधरी, सपरिवार कलकत्ता आ गये । पार्क सर्कस में एक धनी आत्मीय के घर पर ठहरे । प्रायः एक मास वे रुकेंगे । हेमन्त बाबू ने सारी सूचना देने के बाद कालीदा को श्री चौधरी का संदेश बताया । यथा संभव शीघ्र, अर्थात् उसी सप्ताह एक दिन आकर वे श्रीयुक्त कालीदा को प्रणाम करना चाहते हैं ।

दादा ने उत्तर दिया, 'देखो भाई, इस सप्ताह मैं अधिक व्यस्त हूँ । श्री चौधरी से कहना कि बाद में किसी दिन मुझसे साक्षात्कार होगा । मैं इसकी पूर्व सूचना दे दूंगा ।'

थोड़ी देर बातचीत करके उस दिन हेमन्त बाबू ने श्री युक्त कालीदा से बिदा ली ।

प्रायः तीन सप्ताह बीत चले । काली दा ने अबतक श्री चौधरी से साक्षात्कार नहीं किया है । हेमन्त बाबू अपने फूफा जी का

जरुरी आवेदन लेकर रोज आते हैं, और रोज ही 'मलय ग्रिल' के बड़े साइज के दो तीन भेजिटेबुल कटलेट खाकर, विरत होकर विदा लेते हैं। जाते समय यही कहते हैं, 'भाई कालीपद फूफा जी तुमसे साक्षात्कार करने को बहुत व्याकुल हो उठे हैं। हताश होकर केवल इतना ही कहते हैं, 'इतने दिन हो गये, महात्मा के दर्शन का भाग्य मुझे अभी तक नहीं हो सका। अब इलाहाबाद वापस जाने का समय भी हो गया। मैं बड़ा ही हत भाग्य हूँ, उनकी कृपा मुझे मिलेगी, यह भरोसा अब नहीं हो रहा है।'

'होगा, साक्षात्कार होगा। इस समय इतने झंझट में पड़ गया हूँ, यह तुम्हें कैसे समझाऊँ हेमन्त ?' यही कह कर कालीदा, उन्हें सांत्वना देते हैं। वैसे मैं देख रहा हूँ,कि दादा किसी जरुरी काम में इन दिनों व्यस्त नहीं हैं। कभी मेरे साथ तथा कभी बंधुवर हेम सोम के साथ लूडो खेल कर समय व्यतीत कर रहे हैं।

इधर हेमन्त बाबू निरुपाय होकर मेरे शरणापन्न हुए। कृपया आप उनको स्मरण दिलाकर तथा ताकीद कर के फूफा जी से साक्षात्कार करा दें। बहुत दुःखी है,वे वृद्ध पुरुष।

मैंने हँस कर उत्तर दिया, 'देखिये हेमन्त बाबू, महात्मा तथा दुरात्मा में छल का अभाव नहीं होता है। श्री चौधरी के साथ यदि दादा भेंट नहीं करते हैं, तब भी मैं विस्मित नहीं हूँगा। ये जो भी करेंगे, इसमें कल्याण निहित है। भेंट करने में दादा देरी कर रहे हैं, संभवतः इसका कोई कारण है।'

इसके बाद के घटना क्रम का वर्णन स्वयं श्री युक्त काली दा के अनुसार ही करता हूँ। उस दिन रात दस बजे वापस आये। हेम सोम और मैं उनके शयन कक्ष में ही सोया था। दादा ने कहा,'आज एक झमेला खतम हुआ। इलाहाबाद के श्री चौधरी, पार्क सर्कस में अपने आत्मीय के जिस घर में ठहरे हैं, वहीं गया था। श्री चौधरी के साथ अवश्य भेंट नहीं हुई, परन्तु उनकी पुत्री के साथ हुई थी।

इसके बाद स्वयं उस दिन की पूरी घटना कह गये :

आत्मीय के घर में दुतल्ले पर श्री चौधरी को दो कमरे मिले थे। सामने ही एक बड़ा सा बरामदा था। इसी बरामदे को पार कर उन दो कमरों में जाना संभव था सामने वाले घर में श्री चौधरी रहते हैं, और पीछे वाले घर में रहती है उनकी स्त्री तथा बालिका पुत्री अतसी। गत दो वर्षों से अतसी कालाजार से पीड़ित थी। हिमालय की तराई से इस रोग की छूत उसे लग गयी थी। उसके बाद इलाहाबाद, लखनऊ और दिल्ली के बड़े-बड़े डाक्टरों से उसे दिखाया गया, किन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। किडनी तथा लिभर भीषण रुप से 'डैमेज' हो गया था। कलकत्ता के निपुण एवं प्रधान चिकित्सों से भी उसे दिखाया गया। वे कोई भी उसे स्वास्थ्य लाभ की आशा नहीं दे पाये। अतसी ने बिलकुल बिस्तर पकड़ लिया था, तथा उसमें बिस्तर से उठने की भी क्षमता नहीं रह गयी थी। श्रीमती चौधरी दिन रात पुत्री को देख कर दीर्घ निश्वास छोड़ती और श्री चौधरी स्त्री से कहते, 'डाक्टरों से जो साध्य था, वह उन्होंने किया। अब भरोसा केवल भगवान का ही है। उन्हीं को पुकारो, देखो युक्ति मिलती है, या नहीं ? प्रारब्ध में जो भोग होगा, उसे भोगना ही पड़ेगा।'

उस दिन संध्या के बाद से ही श्री युक्त कालीदा के मानस पट पर बार बार उदय होते हैं, श्री चौधरी के पार्क सर्कस स्थित घर के दो चित्र। देखते हैं, फूल जैसी शुचि और शुभ्र कन्या, अतसी बिस्तर पर पड़ी कातर हो रही है। साथ ही यह भी देखते हैं, कि अतसी का प्रारब्ध भोग शेष हो गया है, और वह अपना सूक्ष्म देह लेकर आकाश की ओर जा रही है, ऐसी फूल 'जैसी' कन्या और ऐसे निष्पाप माता-पिता। इस कन्या को इस तरह मरने तो नहीं दिया जा सकता!

नवम्बर का अन्त। सर्दी कुछ अधिक पड़ रही है। दुमंजिले के कमरे में श्री युक्त काली दा बार-बार चाय-पान कर रहे हैं, और हेम सोमदा के साथ नीरव लूडो खेल रहे हैं। हठात् वे बोल उठे, 'खेल अभी बन्द करें, कार्य है। रेवा, मेरी काली टोपी और देव-घर से आयी हुई, गरम चादर तो ले आ।

'ऐसी सर्दी में कालीदा कहाँ जाँयगे।' हेम सोम ने जिज्ञासा की? बात ही अनसुनी कर दी दादा ने। तुरत उठ गये, तथा टोपी और चादर लेकर उसी क्षण नीचे चले आये। एक टैक्सी लेकर, पार्क सर्कस पहुँचे। श्री चौधरी के घर के पास जाकर खड़े हुए। फूल जैसी कन्या, अतसी, की स्मृति बार-बार उमड़ पड़ती है। क्षण भर में स्थूल शरीर रहित होकर सदर रास्ते से वे ऊपर चले गये। खिड़की से उन्होंने प्रवेश किया, उस पीछे वाले घर में जहाँ मुमुर्षू बालिका सोथी थी।

घर में घुसते ही कालीदा ने पूर्ववत् स्थूल शरीर धारण किया। धीरे-धीरे आगे बढ़ कर वे अतसी की शय्या के एक किनारे बैठ गये।

हँस कर बोले, 'क्यों अतसी बेटी, इस तरह क्यों सोयी हो? मेरे साथ बातचीत करो।'

क्षीण स्वर में कन्या अतसी ने उत्तर दिया, 'मैं सदा सोयी ही रहती हूँ, अस्वस्थता के कारण उठ कर बैठ नहीं पाती। किन्तु तुम कौन हो?'

"मैं? मैं कालीदा।"

'ओः, तुम वही काली दा हो जिनका नाम कहने से ही पिता जी आंख बन्द करके दोनों हाथ उठाकर, नमस्कार करते हैं। और माँ के आखों में अश्रुधारा प्रवाहित हो जाती है?'

"हाँ रे हाँ। अच्छा अतसी तुम एक बाजीगरी देखो। मेरी ओर देखती रहो। देखती हो मेरे माथे पर कैसी सुन्दर रवीन्द्र टोपी है? अच्छा अब देखो, कहकर दादा ने टोपी निकाल दिया

और उनके माथे का विराट् चांद बाहर हो गया ।

'बड़े मजे की चांद है आपकी', खिल-खिल कर हँस उठी अतसी ।

'देखा तो, कितना बड़ा चांद सम्राट (गंजा) हूँ मैं । अच्छा अब मेरे साथ इस खिड़की के किनारे तो आ ।'

'वह किस तरह । मैं तो विछावन पर उठ-बैठ भी नहीं पाती । वहाँ तक जाऊँगी कैसे ?'

'उठ हरामजादी', कह कर उसके छोटे हाथों पर अपने सिंह के पंजे जैसे हाथ रख दिए ।

इन्द्रजाल से अभिभूत जैसी,अतसी विछावन से उठकर बैठ गयी। सोचती है कैसा आश्चर्य ! उसका रोग, दुर्बलता कुछ भी तो अब नहीं है । जैसे वह अनायास पूर्ववत् स्वस्थ हो गयी है ।

कालीदा के पीछे-पीछे चल कर वह खिड़की के पास खड़ी होती है । अपने अन्तर के उल्लास से कितनी बातें बक-बक करती रहती है । जैसे वह वहुत दिनों बाद अपने बिछुड़े हुए खेल के संगी का पता पा गयी है ।

खिड़की के पास आकर, आकाश की ओर इंगित कर कालीदा ने कहा, 'देखो, आकाश का रंग कितना घना नीला है । पक्षी होकर सारा जीवन उड़ने पर भी तुम उसकी सीमा नहीं पा सकोगी । और यह देखो, एक झुण्ड तोतों का । तुम उनकी तरह उड़ सकती हो ?'

'बेवक़ूफ की तरह तुम क्या कह रहे हो ?'अतसी ने उत्तर दिया। 'ऐसा मैं कैसे कर सकती हूँ, मैं पक्षी तो नहीं ।'

किंतु मैं कर सकता हूँ । देखोगी ?

'दिखाओ न, धत् यह नहीं हो पायगा ।'

'यह देखो', कहकर क्षण भर में ही कालीदा स्थूल शरीर रहित हो गये । उसके बाद खिड़की के ग्रिल से अंतर्धान हो गये । 'यह क्या ! चले गये, चले गये—कहती हुई, चिल्ला उठी, अतसी ।

माता और पिता घबराकर बरामदे से दौड़ पड़े। भय से माँ की आँखें फैलीं रह गयी। वे उच्च स्वर में बोल उठीं—'यह क्या, तुम बिछावन छोड़ कर इतनी दूर आ गयी। सर्वनाश !'

'नहीं माँ, मैं बिलकुल चंगी हो गयी हूँ। तुम्हारे कालीदा तो यही कह कर गये हैं।'

'कालीदा', समवेत स्वर में चिल्ला पड़े श्री चौधरी और उनकी स्त्री। कहाँ गये कालीदा।'

'यहीं तो, मेरे सामने खिड़की से अदृश्य हो गये। अवतक कितनी गपशप की मेरे साथ।'

श्री चौधरी के नयनद्वय से पुलकाश्रु झड़ने लगते हैं। बोलने लगे, 'माँ, तू बड़ी भाग्यवती है, इसीलिए तुमने उनका दर्शन पाया। मेरा भाग्य ! मुझे अभी तक दर्शन नहीं मिला।'

अगले सप्ताह ही एडवोकेट चौधरी को श्यामपुकुर वाले घर में श्री युक्त कालीदा ने बुलाया। उसके बाद उसी दिन गंगा के तीर पर ले जाकर उनकी चिर इच्छित आकांक्षाएँ पूरी की। गुरुदेव के निर्देशानुसार जिस योग क्रिया का निर्देश पाने के लिए वे कलकत्ता आये थे, वह उन्होंने पायी। अपना अभीष्ट सिद्ध हो जाने के बाद, स्त्री और कन्या के साथ अपने विधिनिर्दिष्ट शिक्षागुरु को प्रणाम करके वे चले गये।

१९४२ साल। उस समय के कर्जन पार्क को जिन्होंने देखा,होगा उनके मानस पट पर इस मुख्य बगीचे की स्मृति अभी भी चिर उज्जवल होगी। आजकल की तरह, उस समय यह पार्क ट्राम वायर द्वारा खंडित नहीं हुआ था, और जनारण्य के भीतर अपनी निजी सत्ता उसने खोयी नहीं थी। बाग का रख-रखाव उस समय अच्छा था,रंग और रससे परिपूर्ण क्रिसेन्थयम् डालिया,और जिनिया उद्विग्न यौवना की भांति खिले रहते। पीछे के हिस्से में खड़े थे, बड़े-बड़े नाग चंपक जो संध्या की धूप में स्वर्णिम आभा बिखेरते

रहते। संध्या के बाद यह जन कोलाहल के बीच स्थित बगीचा धीरे-धीरे जन विरल हो जाता। यह मेरा तथा श्री युक्त कालीदा का बड़ा ही प्रिय स्थान था। दिन शेष होने पर हम दोनों कभी-कभी वहाँ आकर बेठते।

उस दिन संध्या से थोड़ी ही देर बाद दादा पकड़ में आ गये। एक पेड़ के नीचे बैठे, आनंद पूर्वक सिगरेट पी रहे हैं। सोत्साह पास बैठ गया। कुछ समय उनके साथ नाना प्रसंगों पर आलोचना में कट गया।

इसी समय, एक काला, लम्बे चेहरे वाला, मालिश वाला छोकरा हाजिर हुआ। श्री युक्त कालीदा को भक्ति पूर्वक सलाम करके बोला, 'बाबू जी, कुछ जरुरत है ?'

पाकेट से सौ रुपये का नोट निकाल कर, दादा ने कहा, 'अरे, यह नोट क्या भुना कर ला सकोगे ? और इसके साथ ही कुछेक पाकेट 'रेड एण्ड ह्वाइट 'सिगरेट और एक दियासलाई भी लाना।'

'जी हाँ,कह कर वह व्यक्ति पार्क से धर्मतल्ला की ओर चला गया।

'आपकी सौ रुपये की रेजगारी वापस आ जायगी क्या ? हँस कर मैंने कहा।

प्रत्युत्तर में दादा ने कहा, 'नहीं—यह खूब विश्वासी है।'

'तब क्या यही आपका 'लेटेस्ट रिक्रूट,' शौकत है ?'

'हाँ, यही शौकत मुहम्मद है। यहाँ के कुख्यात तेल मालिश वालों का लीडर।'

श्री युक्त कालीदा ने इसकी कहानी कई बार स्वयं कही थी। एक बार एक सादी पोशाक में पुलिस वाले ने शौकत के साथ, इसी पार्क में अभद्र व्यवहार किया था, उससे काफी रुपये की मांग कर रहा था। पुलिस वाले का जुल्म देखकर वे आगे बढ़ आये, दृढ़ स्वर में उन्होंने कहा, 'खबरदार, ये सब गैर कानूनी काम यहाँ और नहीं चल पायगा।' और आश्चर्य, पुलिस वाले ने कालीदा

को सलाम करके तुरत अपना रास्ता लिया। संभव है, उसने समझा हो कि यह तेजस्वी मनुष्य छद्मवेश में कोई उच्चपदस्थ पुलिस अफसर होंगे। और सादे पोशाक में अनायास आ गये हैं।

उसी समय से दुनिया के एक श्रेष्ठ व्यक्ति, शौकत की दृष्टि में 'बाबूजी' हो गये।

दादा को सावधान करने की दृष्टि से मैंने कहा, 'आप तो जानते ही हैं ऐसा कोई क्राइम नहीं है जो ये तेल मालिश वाले न कर पायें।'

हँस कर उन्होने उत्तर दिया, 'इस समय इसका पूरा शरीर मेरे वश में आ गया है। जानते हैं, उस दिन 'उन्होंने' (दादा के मार्ग दर्शक गुरु, शिवकल्प महात्मा) विनोद के स्वर में मुझसे कहा, 'तुम्हारा काम देख कर यही धारणा होती है, कि स्वर्ग और मर्त्य का प्रभुत्व लेकर भी तुम्हारा समय नहीं कट पा रहा है, और अब पाताल का भी राज्य चाहिये।'

इसके बाद दादा ने गंभीर होकर कहा, "सत्य ही, 'इस' अंडर वर्ल्ड' और यहाँ के 'अन्डर डाग्स,' इनका भी तो थोड़ा ख्याल करना चाहिये !

कुछ दिनों बाद उन्होंने मुझसे कहा था, 'शौकत को नगण्य न समझें। उसके पूर्व जन्म की सारी बातें मुझे ज्ञात हैं। अतीत में यह एक विराट् धर्म मण्डली का नेता था। इस जीवन में उसका मेरे पास कुछ पावना है। इस 'क्रिमिनल' शरीर में शौकत है अवश्य, किन्तु स्वभावतः वह विलकुल आत्म भोला, निर्मोह और दूसरे के लिए अपना जीवन देने में भी सक्षम है। इसके अलावा, यह भी देखिये कि इस 'अंडर वर्ल्ड' का नेतृत्व स्वाभाविक भाव से उसके हाथों में चला आया है। यह भी ध्यान रखेंगे कि उस साधना का एक विराट् आधार भी है।'

दादा से शौकत के विषय में और भी बातें सुनी थी। इसको कई वर्ष बीत गये थे। कलकत्ता के अनेक अंचलों में उस बार प्लेग

का आक्रमण हुआ था। शहर में सर्वत्र आतंक था । कुछ दिनों से शौकत ने श्री युक्त कालीदा का दर्शन नहीं पाया था, और वह व्याकुल हो उठा था । धर्मतल्ला तथा कर्जन पार्क के बीच इधर-उधर घूमता रहा, कि हठात् उसके 'बाबू' का दर्शन हो जाय । 'बाबू जी' के घर या आफिस का पता उसे मालूम नहीं है, जिससे मुश्किल हो गयी है ।

खिदिरपुर ब्रीज से थोड़ा उत्तर, फोर्ट के त्रिकोण हाते के पास एक सिद्ध, शक्तिधर फकीर रहते थे। विस्मयकारी अलौकिक शक्ति या करामत उनके पास प्रचुर थी । फकीर से शौकत का काफी दिनों से परिचय था, तथा वे उससे स्नेह भी करते थे ।

उस दिन सीधे फकीर के दरवाजे पर जाकर उसने प्रार्थना की, "मेरे 'बाबू जी' को बुला दो, तभी मैं समझूँगा, तुम्हारी कुदरत ।"

पोटली से एक स्फटिक की माला बाहर करके फकीर साहेब ने कहा, 'इधर आओ ।'

वह आगे बढ़ गया । उसके गले में माला पहनाकर फकीर साहेब ने हँस कर कहा, 'जाओ बेटा, इस माला को पहने रहना । दस दिनों के भीतर तुम्हारी 'बाबू जी' के साथ भेंट होगी । भेंट होते ही माला उतार देना ।'

'देखिये फकीर साहेब, मुझे धोखा मत दीजिये । आपकी बात ठीक न होने पर, दस दिनों के बाद यहाँ आकर सभी नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा । मेरा नाम शौकत है। हाँ !'

फकीर ने हँस कर शौकत की पीठ पर हाथ मारा और कहा, 'फिकर मत करना बेटा, सब ठीक हो जायगा ।'

स्फटिक की माला, शौकत दिन रात अपने गले में ही रखता, यहाँ तक कि सोते समय भी उसे गले में रखता । देखते-देखते ही नौ दिन शेष हो गये । दसवें दिन पागलों जैसे धर्मतल्ला और एस्प्लेनेड के बीच वह घूमता रहा । उसके 'बाबू जी' कहाँ हैं ? फकीर

के बारे में उसकी उच्च धारणा है, उनकी करामत व्यर्थ तो नहीं होगी ? किंतु आज ही तो दर्शन पाने का अंतिम दिन है । उसके मन में बड़ी अस्थिरता है ।

सारे दिन की भाग दौड़ से क्लान्त, शौकत रासमनि बाजार के उत्तर वाले रास्ते पर आया । एक पुराने आत्मीय की चारपाई पर सो कर थोड़ी देर के लिए विश्राम करने लगा ।

हठात् 'बाबू जी' का कण्ठ-स्वर उसके कान में पड़ा । तुरत वह उठ खड़ा हुआ । श्री युक्त कालीदा इसी रास्ते से किसी कार्य वश जा रहे थे ।

उन्होंने देखा कि रास्ते के किनारे एक चारपाई पर शौकत सोया हुआ है । उच्च स्वर में उन्होंने उसे पुकारा ।

'बाबूजी, बाबूजी,' कहता हुआ, उन्मादग्रस्त की तरह, शौकत रास्ते पर लोट पड़ा । खड़ा होकर बोलने लगा, 'शाबास फकीर ! शाबाश तुम्हारी जवान और तुम्हारी, करामात ! मुझे 'बाबूजी' का दर्शन ठीक दस दिन के भीतर ही हो गया ।'

धीरे-धीरे स्फटिक की माला गले से निकाल कर शौकत ने एक ओर रख दिया ।

अब उसने कालीदा को ससम्मान उस चारपाई पर बिठाया । दौड़ कर दो पैकेट 'रेड एण्ड ह्वाइट' सिगरेट ले आया । उसके बाद उसने बगल वाले ग्वाले की दुकान में आर्डर दिया, 'बाबू जी के लिए मलाईदार चाय बनाओ और मसाला भी दे दो ।' कालीदा अपने इस भक्त को प्रसन्न दृष्टि से देख रहे हैं, और उसके महान प्रेम का स्वाद ले रहे हैं ।

मलाईदार चाय पीकर दादा चारपाई पर बैठ गये और बोले, 'बोलो बेटा, अपनी सारी बात कहो, बहुत दिनों से मैं इधर आ नहीं पाया ।'

शौकत दादा को एक हाथ से पंखा झल रहा है, और अपने मन

की सारी पूंजीभूत भावनाएँ उड़ेल रहा है।

कुछ देर बाद दादा उठ खड़े हुए और बोले, 'शौकत, आजकल कर्जन पार्क अधिक नहीं जा पाता हूँ इसी कारण मुझसे तुम्हारी भेंट नहीं हो पाती। मेरा अखबार वाला आफिस तुम कभी देख लो । मिशन-रो तो पास ही है। एक दिन मैं ही तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा। और हाँ, हठात् कभी घोर विपत्ति पड़े तो मेरा नाम लेना । मुझे स्मरण करना। समझे बेटा।'

'जी हाँ'—कह कर उसने भक्ति पूर्वक कालीदा के चरण स्पर्श किए। यह कह कर दादा चले गये, और रात्रि के अंधकार में ओझल होते हुए उनके दीर्घ शरीर को निर्मिमेष नेत्रों से शौकत देखता रहा।

दो मास बाद की बात। कलकत्ते के कई अंचलों में प्लेग का आक्रमण अभी भी चल रहा है । शौकत पहले खिदिरपुर अंचल में रहता था, परन्तु कुछ वर्षों से कोलू टोला की तरफ चला आया है । यहाँ एक फ्लैट के सीढ़ी के पास एक छोटे कमरे को उसने किराए पर ले लिया है । रात को वहीं आकर सोता है। हठात् एक दिन देखा गया कि फ्लैट के आसपास चूहे गिरने शुरु हो गये । एम्बुलेन्स गाड़ी भी कई बार देखी गयी । कई आदमी भी मर गये हैं । सभी आतंकित हैं।

शौकत का मित्र हाफिज उस दिन आया था। बार-बार शौकत से घर जाने का आग्रह करने लगा । उसी के शब्दों में, 'शौकत प्लेग का माफिक जान लेने वाला बेमारी और नहीं। तू घर चला जा। जरुरत होने से पैसा हम देगा'।

किंतु शौकत के मन में कोई चंचलता या आतंक नहीं है। पाकेट से जयमाला निकाल कर उसने दोस्त से कहा, 'देखो हाथ में मेरा यह तस्वीह और दिल में मेरा बाबू जी । कोई खतरा का परवाह मैं नहीं करता'।

अनजान में ही कब शौकत ने अपने 'बाबू जी' को अपने हृदय सिंहासन पर इष्ट रुप में बिठा दिया है, तथा उनके चरणों में सब समर्पण कर दिया है, यह स्वयं भी नहीं जानता ।

इसके बाद के घटना क्रम का शौकत ने स्वयं विस्तार पूर्वक वर्णन किया था। दादा के श्री मुख से वे सारी बातें सुनकर, उसका एक रेखा चित्र यहाँ दे रहा हूँ :—उस दिन सबेरे से ही शौकत अपने कमरे में चारपाई पर पड़ा है। गले में काफी सूजन तथा तीव्र वेदना है। उसकी यह अवस्था देखकर, घर का दरवान जल्दी से एक डाक्टर को बुला कर ले आया। सतर्कता पूर्वक रोगी की परीक्षा करके डाक्टर ने सिर हिलाया और कहा, 'प्लेग का भयानक आक्रमण हो गया है । एम्बुलेन्स लाने के लिए सूचना दो तथा इसे शीघ्रातिशीघ्र सर्कुलर रोड स्थित प्लेग अस्पतालमें पहुँचा दो ।'

मुमूर्षु शौकत को लेकर एम्बुलेन्स अस्पताल की ओर चली जा रही है । इस समय का विवरण स्वयं शौकत ने ही दिया था, योगेश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय के समक्ष । उसका सारांश दे रहा हूँ :—

'स्ट्रेचर पर निर्जीव जैसा पड़ा हूँ । हठात् देखता हूँ, बाबू जी, कि आप इस एम्बुलेन्स के भीतर बैठे हैं । मेरी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए सिगरेट पी रहे हैं । मेरे गले तथा माथे में तीव्र वेदना है। गले की गिल्टी फूट गयी है, और मुझे सांस लेने में भी कष्ट हो रहा है ।'

अनायास आपने डांट कर कहा, 'बेटा बेवकूफ, चुप रहो, अभी व्यथा तथा वेदना चली जायगी ।'

कुछ देर बाद ही वेदना और श्वास कष्ट में काफी कमी हो गयी। स्ट्रेचर पर बैठ कर मैंने आपको सलाम किया और कहा, 'बाबू जी, अब मुझे डर नहीं है, आप स्वयं आ गये हैं। मेरे प्रति सदा भाव रखेंगे, ।

'सोये रहो। बहुत हिलो--डुलो नहीं।' कह कर आपने सिगरेट का धुँआ उड़ाया। उसके बाद मैंने ताजुब की बात देखी कि एम्बुलेन्स के भीतर से आप अदृश्य हो गये।

शरीर अवसन्न था। थकावट के कारण स्ट्रेचर पर ही सो गया। प्लेग अस्पताल के डाक्टर के पास मुझे ले जाया गया। सतर्कता पूर्वक मेरे गला, माथा, हृदय की परीक्षा करके उसने झुंझलाकर मेरी ओर देखा।

उसके बाद शौकत की अपनी भाषा में—'डाक्टर ने मेरा कमर में एक लात मार दिया, बोला–साला यहाँ दिल्लगी उड़ाने के लिए आया है ? अभी भाग जाओ यहाँ से'।

'पैदल ही चला आया बाबूजी, अपने कोलूटोला वाले घर तक। सभी को मुझे देख कर ताज्जुब हुआ।'

शौकत का स्वयं का वर्णन, यहाँ समाप्त हुआ। इस समय वह श्री युक्त कालीदा के सामने उपस्थित होकर कह रहा है, 'बाबू जी, शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। कुछ दिनों के लिए अपने घर चला जाँऊ ? शरीर ठीक हो जाने पर वापस आ जाऊँगा।'

'अच्छा तो है, कुछ दिन घर हो आओ। फिर भी तुम्हारा समय अभी खराब है, और विपत्तियाँ आवेगी। खूब सावधानी से रहना। दोनों समय माला जपना और मेरा स्मरण करना। जाओ। बेटा तुम्हें कोई भय नहीं है।'

शौकत का घर उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक गाँव में है। पिता नहीं हैं, केवल मां और दो बच्चे। तीन -चार बीघे जमीन जिससे उसके छोटे से संसार का किसी तरह निर्वाह हो जाता है। कई मास अपने ग्राम में व्यतीत कर, वापस आने पर शौकत ने श्री युक्त कालीदा को अपनी अलौकिक कहानी सुनायी :–

अपने गाँव जाकर, बाबूजी, प्रायः दो मास तक काफी शांति से ही था। उसके बाद अकस्मात एक खतरे में पड़ गया। अनायास

पुलिस ने आकर पूरा मुहल्ला ही घेर लिया । हमारे गाँवों के घर, बाबू जी, आपके गाँवों की तरह नहीं हैं। सभी घरों के ऊपर छत लगी होती हैं । पुलिस ने मेरे पास वाले घर को 'सर्च' करके कुछ आपत्तिजनक पदार्थ पकड़ लिया। वहाँ शराब की भट्ठी थी । पास वाले घर में ही मैं रहता था, तथा नया चेहरा होने के कारण मुझे भी इन्सपेक्टर ने इस केस में पकड़ लिया । मुझे गिरफ्तार कर लिया ! मैं उससे बार-बार कहता कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु वह मेरी बात अनसुनी कर देता । गाँव के काफी लोग एकत्रित हो गये थे, परन्तु किसी को साहस नहीं था कि मेरी निर्दोषिता की बात कह सके।

ऐसे विपद् की घड़ी में, बाबूजी, आप अनायास वहाँ उपस्थित हो गये। शरीर पर खद्दर का ढीला कुर्त्ता, माथे पर काली टोपी, तथा मुँह में सुलगा हुआ सिगरेट। आपने गुस्से में कुछ देर तक पुलिस इन्सपेक्टर से झगड़ा किया । उसके बाद पता नहीं क्या समझ कर इन्सपेक्टर साहेब आपको देख कर डर गये। संभव है, यह समझा हो कि कोई मंत्री हैं। इसी बीच आप अदृश्य हो गये । बाबू जी। आपको कहीं भी ढूढ़ नहीं पाया'।

पुलिस दल के चले जाने के वाद मैंने ग्रामवासियों से कहा 'तुम साले खड़े-खड़े यहाँ मजा ले रहे थे, मेरे पक्ष में कोई बात भी नहीं कर पाया। नसीब अच्छा था, मेरे बाबू जी, कलकत्ता से यहाँ आकर उपस्थित हो गये थे। उनकी डांट सुन कर तथा उनका तेज देख कर ही तो उस समय इन्सपेक्टर मुझे छोड़ दिया था । बाबूजी, गाँव वाले मेरी बात पर विश्वास नहीं करते थे। कहते थे, तुम्हारे वावू जी को तो हम लोग नही देख पाये। कैसे वे देख पॉयेगें वावूजी आप तो करामत कर के गये थे, जैसे प्लेग वाले समय एम्बुलेन्स के भीतर चले गये थे ।

दादा के चरण छूकर भक्ति पूर्वक शौकत प्रणाम करता है तथा विदा लेता है। उसके नयनद्वय से अविरल अश्रुपात हो रहा है।

इसके बाद, दादा से भक्त शौकत की भेंट नहीं हुई। काशी में रहते समय काफी बाद में एक बार मैंने दादा से शौकत के बारे में जिज्ञासा की थी। उन्होंने मृदु हँसी हँसते हुए कहा था, 'इस समय वह अपने गांव में ही वहुत लोगों का परित्राता तथा ज्ञान-दाताहोकर बैठा हुआ है।'

१९४८ साल, उस समय मैं बेठक-खाना रोड वाले मकान में रहता था। शरद ऋतु थी। रात देरी से लौटा था, इसलिए सुबह उठने में देरी हो गयी थी। मात्र एक कप चाय लेकर बैठा था, इसी समय श्रीमान धीरंजन आकर उपस्थित हुए। मिलिटरी कायदे से खड़े होकर, अपना संवाद, उन्होंने एक साँस में ही सुना दिया— 'दादा, दिल्ली जांयगें, ऐसा सोच रहे हैं। आपके परामर्श से ही इस विषय में 'फाइनल' करेंगे। कल आप वहाँ गये क्यों नहीं ? अभी मेरे साथ चलिए।'

'धरिते बलिए बांधिया आने,' इसी किस्म के व्यक्ति थे, मेरे धीरु भाई। श्री युक्त काली दा के वे अनन्य सेवक थे, और इसी दुर्लभ अधिकार के कारण सभी उनसे डरते थे। दादा के दर्शनार्थी लोगों में ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिनका धीरु भाई के उग्र मिलि-टरी स्वभाव के साथ संघर्ष न हुआ हो, और उनका गर्जन-तर्जन न सुनना पड़ा हो। तब भी यथार्थतः किसी अज्ञात कारण से धीरु भाई मेरे प्रति अत्यधिक आकृष्ट थे, और मुझसे स्नेह करते थे। कोई भी मेरा निर्देश पालन करने में उन्हें कोई दुविधा नहीं थी।

मकान के पास ही द्वारिक घोष की दुकान थी। मिलू की मां ने बड़े संदेश और इमरती वहाँ से मंगा कर धीरंजन को खिलाया। इतने समय में मैं स्नान करके तैयार हो गया।

वे सभा में जमे बैठे हैं। मुझे देख कर बोले, 'अरे महाशय, हेरम्ब बाबू दो दिनों से लौट जा रहे हैं। उनको दिल्ली जाने के संबन्ध में निर्देश नहीं दे पा रहा हूँ। जाइये, ऊपर बैठिये। आज ही इस विषय में फैसला करना होगा।' दो घंटे वाद, अभ्यागतों की गोष्ठी समाप्त होने पर श्री युक्त काली दा ऊपर चले गये। उन्होंने कहा, 'हेरम्ब बाबू ने तो उस दिन की मेरी बात ही पकड़ ली है, और कहते हैं कि उनके साथ मैं दिल्ली चलूँ। पिछले दिनों मैंने प्रसंगवशात् कहा था–कलकत्ते की भीड़ से मैं ऊब सा गया हूँ, चलिये कुछ दिन कहीं बाहर काट लिया जाय। हेरम्ब बाबू को दिल्ली में कुछ व्यवसायिक कार्य है। वहाँ वे प्रायः दो मास रुकेंगे। उन्होंने जिद पकड़ लिया है, कहते हैं, 'मेरे साथ आप भी चलिये, कोई असुविधा नहीं होगी। दो आदमियों के लिए कन्स्टिट्यूशन हाउस में रुकने की अच्छी व्यवस्था कर ली जायगी।'

थोड़ी देर चुप रह कर श्री युक्त काली दा ने कहा, 'इस के अलावा, यह भी सोचता हूँ कि दिल्ली देश की राजधानी है, वहाँ से हम लोगों को कुछ संबन्ध रखना आवश्यक है। आप भी कभी-कभी एक दैनिक पत्र निकालने की बात करते हैं? इसके लिए कितने रुपये, कितनी व्यवस्था की आवश्यकता पड़ेगी। दिल्ली से संपर्क न रखने से क्या काम चलेगा?'

बराबर यही देखता आया हूँ कि काली दा जब भी बाहर जाते हैं, उसमें कोई गूढ़ तात्पर्य निहित होता है। सूक्ष्म लोक किंवा अध्यात्मलोक का कोई अनुष्ठान वे संपन्न कर आते हैं। उनके श्री मुख से ही इस तरह की कितनी घटनाएँ जानने का सुयोग प्राप्त हुआ है। इसीलिए दादा की ओर देख कर हँसते हुए मैंने कहा, कलकत्ते की भीड़, दैनिक पत्रिका की व्यवस्था–यह तो हुआ वाह्य। असली बात क्या है, जिसके लिये इस बार आप बाहर जाना चाह रहे हैं?

दादा ने दीर्घ काल तक अपार स्नेह तथा घनिष्ट साहचर्य

मुझे प्रदान किया है, इसीलिये यह प्रश्न करने की स्वाधीनता मैं ले सका।

शांत तथा स्निग्ध स्वर में उन्होने कहा,'उस अंचल में कई लोग भेंट करने के लिए व्याकुल हैं, इसीलिए जा रहा हूँ। थोड़ा घूम आऊँ।

पूर्व घटित घटनाओं द्वारा जानता हूँ कि योगीश्वर के दर्शन के लिए व्याकुल होकर जो दूर से उनके हृदय की कृपा तरंगों को खींचते हैं, वे महात्मा साधारण नही हैं। उनमें से कुछ अष्टसिद्धि प्राप्त महापुरुष हैं, कोई प्रकृति को वश में करने की शक्ति के अधिकारी है तथा कोई ब्रह्मविद् हैं। शरीर 'डी–मेटीरिएलाइज' करके इनमें से अनेक कलकत्ता आकर दादा से भेंट कर गये हैं!

यही भाव लिए हुए मैंने कहा, 'आपके लिये तो बाहर जाना काफी परेशानी का काम है, वे लोग क्यों नहीं यहाँ आ जाते हैं।'

शांत स्वर में उन्होंने उत्तर दिया, 'दुर्बलता, दीर्घकालीन अविराम साधना और सिद्धि की मर्यादा तो देनी ही होगी। मुझे भी उनके पास पहले जाना होता है। इसीलिए तो उधर जाने की बात सोच रहा हूँ।'

बराबर ही देखता आया हूँ, श्री युक्त कालीदा हैं, 'मर्यादा पुरुषोत्तम' व्यावहारिक किंवा आध्यात्मिक जीवन में उन्होंने सभी को मर्यादा दी है, और उसे अपना बना लिया है।

मैंने कहा, 'जाना तो तय हो गया, परन्तु आपकी सेवा के लिये आपके साथ कौन जा रहा है? आपके लिये तो सूटकेस खोलकर अपना कपड़ा निकालना और पहन लेना भी एक कठिन कार्य है।'

'क्यों, हेरम्ब बाबू तो हैं। वे मेरे यहाँ के तथा राजनीतिक जीवन के मित्र हैं। यहाँ तो रहस्यमय ढंग से रहते हैं, परन्तु मेरे साथ कलकत्ता से बाहर जाने पर कितने यत्न पूर्वक मेरी सेवा करते हैं,यह आप नहीं जानते। मेरी गंजी तथा कपड़ा अपने हाथों से

धो देते हैं, तथा जूते तक में ब्रश कर देते हैं।

'ऐसा होने पर भी वे दिल्ली में काफी व्यस्त रहेंगे। किसी अन्य व्यक्ति को भी आप साथ ले लें।'

अंत में यहीं तय हुआ कि भक्त प्रवर अमूल्य सेन, दादा के सेवक के रुप में साथ जाँयगे। बालकोचित सारल्य के साथ-साथ इनके अन्दर असामान्य कर्म तत्परता भी थी। इससे पहले वे कलकत्ता पोर्ट कमिश्नर के एन्टीपिलफरेज आफिसर के रुप में प्रचुर ख्याति अर्जित कर चुके थे।

दादा की पार्टी क्रमशः बढ़ गयी। दादा की वृद्धा जननी ने कहा, 'तू इतनी दूर जा रहा है, मुझे भी इस अवसर पर काशी, वृन्दावन तथा हरिद्वार के दर्शन करा दे। शरीर रहे न रहे, इसका क्या ठिकाना,दादा सदा ही महान मातृभक्त थे। माँ की बात उन्होंने तुरन्त मान ली। यही स्थिर हुआ कि माँ की सेवा का भार लेकर प्रभा भाभी साथ जांयगी।

हेरम्ब बाबू का संक्षिप्त परिचय भी देना, यहाँ उचित होगा। हमारे ये बन्धुवर, भारत के साधु-सन्तों के जीवित विश्व कोष ही थे। उच्चकोटि के महात्मा लोग जिस तरह उनकी खातिर तथा आवभगत करते, यह देख कर बहुत लोग विस्मित हो जाते थे। परन्तु मैं उनसे कहता था, 'यह सब खातिर आप की नहीं हो रही है, श्री युक्त कालीदा के 'एन्भाय' समझ कर ही ये सब महात्मा आपसे विशेष स्नेह करते हैं।' सुनकर वे केवल हँसते थे।

हेरम्ब बाबू, आत्म त्यागी तथा शून्य वेदान्ती नंगाबाबा के पुरी वाले आश्रम में कुछ दिनों के लिए गये थे। बाबा की इच्छानुसार उन्हें वहाँ तीन मास ठहर जाना पड़ा। विदा होने के दिन बाबा ने अपने हाथों से माला गूँथ कर उनके गले में डाल दी थी। आत्मज्ञानी, सर्व त्यागी महात्मा के नयन भी उस समय अश्रुसजल हो गये थे।

एक और आत्मज्ञानी पुरुष थे, रमण महर्षि । हेरम्ब बाबू जब भी उनके दर्शनों को जाते, खुशी से उनके मुख पर स्थित हास्य की रेखा फैल जाती । महर्षि कलकत्ता के इस भक्त की खूब यत्न से खातिर करते । उल्लेखनीय है, रमण महर्षि की प्रथम बंगला भाषा में लिखित जीवनी के प्रकाशक थे, हेरम्ब बाबू ।

साधु सन्तों की कुटिया में जितना अवाध प्रवेश हेरम्ब बाबू का था, वैसे ही ब्यावहारिक जीवन में भी, राष्ट्रपति, मंत्री तथा उच्च पदस्थ अफसरों से भी उनका घनिष्ट संपर्क था । यह केवल इसलिए संभव हो सका था, कि वे उच्च-नीच, प्रसिद्ध- अप्रसिद्ध, सभी व्यक्तियों को अपने सहज तथा अकपट स्नेह बंधन से आबद्ध कर लेते थे । सांसारिक विषयों के कार्य भी हेरम्ब बाबू करते, परन्तु वे विषयासक्त नहीं थे । इन्हीं कारणों से उनके पास कभी धन का संचय नहीं हो पाता ।

दिल्ली रवाना होने से पूर्व, उनसे मैंने जिज्ञासा की थी, खूब योजना बनाकर आप सभी को दिल्ली ले जा रहे हैं, इसके बाद भी एक दो आदमी और जायेंगे ही; परन्तु काली दा स्वतंत्र पुरुष हैं, उनके व्यय की कोई सीमा नहीं है, माप नहीं है । आपका बैंक वैलेन्स, इस समय ठीक तो है ?'

सहज भाव से उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरे एक एम० पी० बंधु, भूपेन्द्र सिह मान, कन्स्टिट्यूशन हाउस में ही रहते हैं, इसलिए वहाँ 'कैश' तथा 'क्रेडिट' का कोई अभाव नहीं है, आप निश्चित रहें ।'

इसके कुछ दिन बाद विभुपद कीर्ति तथा उनकी स्त्री, जो मेरी छोटी भाभी हैं, दिल्ली चले गये और वहाँ श्री युक्त कालीदा के साथ ही कन्स्टिट्यूशन हाउस में ठहरे । ये पाँच व्यक्ति वहाँ दो मास तक रुके । सभी खर्च करने में मुक्त हस्त थे । मि० मान, अब तक दादा, के भक्त हो गये थे । इन पाँचों व्यक्तियों के विपुल व्यय का भार उन्होंने स्वयं प्रसन्नता पूर्वक वहन कर लिया था । बाद

में कालीदा ने मि० मान की इस सेवा का प्रतिदान अनायास ही दे दिया था, जिसका वर्णन मैं बाद में करुँगा।

योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय के दिल्ली प्रवास में कई गूढ़ कृपा लीलाएँ निहित थीं। उनमें से एक को मैं लिपिबद्ध कर रहा हूँ। इस घटना का वर्णन, दादा ने स्वयं ही श्यामपुकुर वाले मकान के छत पर बैठ कर, अपने श्री मुख से किया था। श्रोताओं में थे, मैं स्वयं, हेम सोमदा और रोहिनी अधिकारी महाशय। दादा के वक्तव्य का सारांश नीचे दे रहा हूँ :—

दिसम्बर की दिल्ली, रात के प्रायः डेढ़ बज गये हैं। भीषण सर्दी के कारण मानो सारा शहर सिकुड़ा पड़ा है। आनन्द पूर्वक एक पर एक सिगरेट ध्वंस कर रहे हैं, कालीदा। अनायास गंभीर स्वर में उन्होंने कमरे के एक कोने में सोये हुए अमूल्य सेन को पुकारा अरे महाशय, अमूल्य बाबू, सो गये क्या ?'

इस गंभीर आवाज से नींद न टूटे, ऐसा संभव ही नहीं था। चटपट भक्त अमूल्य सेन चारपाई पर उठ बैठे। उसके बाद वे दादा की कुर्सी के सामने उपस्थित हुए, 'जी, सोया नहीं था, थोड़ी तंद्रा जैसी लग गयी थी,।

'अरे महाशय, क्या आपको भी दिल्ली का रोग लग गया ? यह सरकारी अफसरों का शहर है। यहाँ रात ९ बजे के बाद सभी अपने-अपने घरों में बत्ती बुझा कर सो जाते हैं। हम कलकत्ते के लोग तो रात एक-दो बजे को संध्या ही समझते हैं। है न ?'

'जी हाँ, ऐसा तो होता ही है।'

'यहाँ मुर्दे जैसे पड़े रहने से क्या लाभ है ? चलिये हम दोनों थोड़ा बाहर घूम आवें।'

'इतनी रात, तथा इस भीषण सर्दी में ? बहुत अच्छा चलिये।'

'उससें पहले मुझे अपनी 'रसद' चाहिये। सिगरेट समाप्त हो गया है। आठ-दस पैकेट आप ला सकेंगे ?'

अमूल्य सेन हैं, 'एभररेडी,' उन्होंने सोल्लास कहा, 'क्यों नहीं ला सकूँगा ? अभी ले आता हूँ।'

'सिगरेट वाला तो अभी गंभीर निद्रा में होगा, आप लायेंगे कहाँ से ?'

'वह मैं 'मैनेज' कर लूँगा, दादा।'

'हाँ, और भी सुनिये। दो रिक्शों का भी जोगाड़ कर लीजिए। लोदी गार्डेन घूमने जाऊँगा। भीषण सर्दी की रात है, वे अधिक पैसे चाहेंगे। जो मांगेंगे, दे दीजिएगा। बेशी 'हिगलिंग' मत कीजिएगा।'

ओभर कोट पहन कर भक्त प्रवर बाहर चले गये। प्रायः आधे घंटे बाद वापस आये। भीमकर्मा अमूल्य सेन, असंभव को भी संभव कर देने वाले हैं। दस पैकेट सिगरेट और दो रिक्शों का उन्होंने दिल्ली में दिसम्बर की मध्य रात्रि में भी प्रबन्ध कर लिया है।

शरीर पर एक गरम शाल डाल कर दादा बाहर निकल पड़े। दोनों दो रिक्शों में बैठ गये।

अमूल्य सेन ने स्वयं कलकत्ता लौटने पर मुझसे हँसते हुए बताया था, कि रिक्शे वालों को तो मौका मिल गया। उन्होंने दस रुपये वसूल किये। बाध्य होकर वही देना पड़ा। उनको संभवतः यही धारणा हो गयी थी, कि साहेब लोग, इस घोर रात्रि में अभिसार करने चले हैं जिससे किराया वसूल करने में परेशानी नहीं होगी।'

लोदी गार्डेन से लगभग आधा मील पहले दादा ने अमूल्य सेन से धीमें स्वर में कहा, 'आप यहीं दोनों रिक्शों के साथ प्रतीक्षा करें। मुझे एक विशेष कार्य है। यहाँ से आगे नहीं आवेंगे। निरर्थक उत्सुकता का कोई प्रयोजन नहीं है। मैं जब तक न लौटूँ, यहीं प्रतीक्षा करें।'

निद्रित रात, रास्ता जनमान शून्य । ठण्ड और भय से विजड़ित पक्षी, वृक्ष कोटरों में बैठे कलरव करना भी भूल गये हैं । श्री युक्त काली दा, कुहासे से आवेष्ठित पथ पर अग्रसर हो रहे हैं । सिगरेट सुलगा हुआ है । अनायास, दूर जैसे एक ढेला गिरा, उसके बाद दूसरा, फिर तीसरा । एक बड़े शिरीष के पेड़ के नीचे श्रीयुक्त कालीदा, अन्धकार में आकर खड़े हो गये ।

अकस्मात्, चारो ओर एक मृदु शुभ्र ज्योति की आभा फैल गयी । निः शब्द, एक दीर्घाकार, गौर वर्ण महात्मा, सामने आकर खड़े हो गये । माथे पर पिंगल वर्ण की जटाएँ, चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूछ तथा दाढ़ी और शरीर पर पर एक जीर्ण परिधान । उनका सारा शरीर ज्योतिर्मय था । शरीर के दिव्य ज्योति की आभा ही शिरीष वृक्ष के आसपास फूट पड़ी है ।

उनके पास आते ही श्रीयुक्त कालीदा ने उन्हें प्रेम पूर्वक दोनों हाथों से पकड़ लिया । दिव्य आनंद की तरंग दोनों के हृदय में उद्वेलित हो उठी ।

क्षण भर में ही इस शीत त्रस्त उपवन में एक विस्मयकर, कमनीय उष्णता फैल गयी । जैसे चारों ओर पेड़ की शाखाओं तथा लता -गुल्मों पर आनंद की धारा उमड़ पड़ी हो । प्रकृति का परिवेश ही हर्षित हो उठा । निद्रा मग्न पक्षी भी जग कर आनंद पूर्वक कलरव करने लगे ।

इस आगंतुक महात्मा की प्रकृति किंकरी है । इसी से इनकी प्रकृतिवशीकरण शक्ति में कोई संदेह नहीं है । उनके हृदय के आनंद से ही मारा परिवेश उल्लसित हो उठा है ।

अब सहज नृत्य की भंगी में आगन्तुक महात्मा ने योगीश्वर की श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा की । उन्होंने प्रशस्ति मूलक स्तव पाठ आरंभ किया ।

इन अभ्यागत महायोगी का नाम है, अनन्तानन्द स्वामी । बहुत

पूर्व, प्राक् मुसलमान युग में दिल्ली के अधीश्वर थे पृथ्वीराज । पृथ्वीराज की माता के ये दीक्षा गुरु हैं। अधिक वयस हो जाने पर ये हिमालय की एक गुफा में बहुत वर्षो तक ध्यानस्थ रहे। अंत में उनकी योग साधना फलवती हो उठी और इनकी परिणति पूर्ण ब्रह्मज्ञ साधक के रुप में हो गयी । इसी समय इन महात्मा के ज्ञान चक्षुओं के सम्मुख प्रायः साढ़े आठ सौ वर्ष आगे के दैवी लीला का अद्भुत स्वरुप उपस्थित हो गया । उन्होंने देखा कि ऋषि-शक्ति तथा ब्रह्मशक्ति के पूर्ण प्रकाश का घटन बीसवीं शताब्दी के एक बंगाली महात्मा के शरीर में हो गया है। वे सर्व व्यापी, विश्वनियन्ता की एक विशिष्ट भूमिका ग्रहण करेंगे। पापहत कलियुगको वे दैवी शक्ति बल से शुद्ध कलियुग में परिणत करेंगे । वर्तमान युग में वे युगान्तर करेंगे। कलियुग का बाहरी परिवेश तो ज्यों का त्यों रहेगा, परन्तु दैवी शक्ति बल से उसके भीतर वे सत्ययुग का प्रकाश लावेंगे तथा एक विस्मयकर युगान्तर घटेगा।

भविष्य के इस महारुपान्तर का चित्र महायोगी अनन्तानन्द के मानस पट पर चित्रित हो उठा । दिव्य आनंद से वे आत्मविस्मृत हो उठे । उसके बाद हिमालय की कंदरा में ध्यानासन पर बैंठे-बैठे अनायास उनकी संकल्प वाणी उच्चरित हो उठी—"हे सौम्य, हे रुद्र अवाङ्मनसगोचरम, हे परम प्रभु, मैं आपके इस अभूतपूर्व मनुष्य रुप का इसी शरीर से दर्शन कर सकूँ।"

ब्रह्मविद अनंतानन्द स्वामी के सम्मुख प्रकृति उस समय किंकरी होकर दंडायमान थी । प्रकृति ने इस संकल्प वाणी को स्वीकार कर लिया । उसी क्षण से महात्मा के शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु उसी अवस्था में रह गया। शरीर के किसी कोशिका (सेल) में लेशमात्र का भी रुपान्तर नहीं हुआ।

इतने दिनों बाद अनंतानन्द जी का संकल्प पूरा हुआ। योगीश्वर का दर्शन करके वे तृप्त हो गये। भक्तिपूर्वक, भूमिष्ट होकर प्रणाम करके वे उसी क्षण अंतर्धान हो गये।

अमूल्य सेन को साथ लेकर जब श्री युक्त कालीदा कन्स्टिट्यूशन हाउस वापस आये, उस समय रात के प्राय: चार बज चुके थे। शेष कई पैकेट सिगरेट भस्मीभूत करते-करते सबेरे पक्षियों का प्रथम कलरव सुनाई पड़ा।

दो मास बाद श्री युक्त कालीदा कलकत्ते वापस आ गये। श्यामपुकुर वाले मकान में जाने पर मैंने देखा कि वे ऊपर वाले सोने के कमरे में दो-तीन भक्तों के साथ बैठे हैं।

मेरी सहानुभूति अर्जित करने की दृष्टि से उन्होंने, असहाय से होकर मुझसे कहा, 'यह देखिये पैर की क्या अवस्था है ? यह ठीक ही नहीं हो रहा है।'

मैंने कहा, 'देखता हूँ कि दिल्ली जाने पर भी अनेक रोगी जुट गये थे।' दादा चुप से हो गये और उनके मुख पर एक मृदु, मधुर रहस्यमय हँसी की रेखा दीख पड़ी।

दो सप्ताह बाद श्री युक्त कालीदा के पैर का घाव पूर्ण रुप से ठीक हो गया। उसके कुछ दिनों बाद एक दिन छत पर बैठ कर हम दोनों की अनेक प्रसंगों पर बातचीत हो रही थी। दिल्ली छोड़ने से पूर्व, पैर के घाव के कारण काफी कष्ट सहन करना पड़ा, इस बात का उल्लेख करते हुए उन्होंने हँस कर कहा, 'भूपेन्द्र सिंह मान मुझे बहुत स्नेह तथा श्रद्धा करता है। मेरे लिये निर्विकार भाव से उसने कितने रुपये व्यय किये। आते समय मैंने देखा कि कुष्ट रोग की काली छाया से वह घिर गया है। उसी क्षण मैंने उसे अपने पैर में खींच लिया। मान ने मेरे लिये यथेष्ट कष्ट सहा है।'

ऐसे ही सांसारिक प्रेम के प्रतिदान में प्रत्येक पैसे का हिसाब

करके कालीदा, असंख्य मनुष्यों का उपकार कर गये हैं। किंतु ब्रह्म-ज्ञान का दिव्य ज्ञान उन्होंने कितनों को दिया है ? बहुत कम लोगों को ही तो ! वहां वे पिता नहीं, भाई नहीं, केवल निरपेक्ष विचारक के आसन पर प्रतिष्ठित हैं। वहाँ वे सब कुछ वितरण करते हैं, मात्र औचित्य के आधार पर। उनका वह हिसाव जन्मांतर के संस्कार, इस जन्म की साधना तथा त्याग और तितिक्षा की भित्ति पर ही आधारित है। योगीश्वर के स्नेहघन, प्रेमधन मूर्त्ति को, इस जीवन में, मैंने अनेक बार देखा है, उसी तरह कभी-कभी उनका रुद्ररुप भी देखा है। उनका 'महद्भयः वज्रः समुद्यतः रुप'। वही आज सोचता हूँ कि भगवत्ता के प्रकाश स्वरुप इस योगीश्वर मूर्त्ति के साथ कितनों का सही माने में परिचय हुआ है, या होना संभव है ?

२

सन् १९६६ की १९ अक्टूबर को काशी के केदार घाट स्थित भवन में योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय ने देह त्याग किया। लम्बी अवधि से जिस परमाश्रय को पाकर धन्य हो रहा था, न जाने कहाँ लुप्त हो गया। भौम काशी, चिन्मय काशी के अस्तित्व का प्रकाश, मन तथा प्राण में शून्यता का बोध कराते हुए मानो लुप्त हो गया।

कुछ दिन बाद कलकत्ता वापसी की वेला। काशी फिर आना हो सकेगा या नहीं, यह नहीं जानता। विचार किया, प्रस्थान से पूर्व एक बार श्री युत गोपीनाथ दा से मिल कर ही जाना होगा। हमारे गोपीनाथ दा भारतीय सारस्वत साधना के मूर्त विग्रह हैं। जनता में वे महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ कविराज के नाम से

प्रसिद्ध हैं। काफी समय से देखता आ रहा हूँ, कि श्री युक्त कालीदा कितने असीम प्रेम तथा स्नेह की दृष्टि से इन महान मनीषी एवं साधक को देखते थे, तथा उनके साथ एक स्निग्ध और मधुर अंतरंग संबन्ध स्थापित कर लिया था।

जब कभी मैं कुछ दिनों के लिए काशी जाता, पहुँचते ही श्री युक्त कालीदा का हुकुम होता, "दो एक दिनों के अंदर ही गोपीनाथ दा से अवश्य साक्षात्कार कर लें। आपके आने की पूर्व सूचना मिल जाने से, आपसे मिलने को वे व्यग्र हो गये हैं।"

केवल इतना ही कह कर वे शांत नहीं होते थे। दो-एक दिन के अन्दर ही स्वयं प्रबन्ध करके, भानु प्रसाद के साथ मुझे सिगरारोड भेज देते थे। वहाँ पहुचते ही गोपीनाथ दा सोत्साह श्रीयुक्त कालीदा के प्रसंग में ही चर्चा करके मस्त हो जाते, तथा मुझसे बार-बार प्रश्न करके उनके विगत पचीस वर्षों के व्यक्तिगत (आत्मिक) जीवन के नाना अति आश्चर्यजनक तथ्यों का श्रवण करते और यही प्रधान कारण था, कि वे मुझसे साक्षात्कार करने को बराबर व्यग्र रहते।

इस बार भी कलकत्ता यात्रा से पूर्व, भानुप्रसाद को साथ लेकर, पूर्ववत गोपीनाथदा के भवन पर उपस्थित हुआ। श्रद्धेय आचार्य बार-बार यही कहने लगे, "एक विराट् पुरुष चले गये, काशी के आध्यात्मिक आकाश का एक नक्षत्र अस्त हो गया।"

थोड़ी देर ठहर कर उन्होंने कहा, "कालीदा अपने चारों ओर एक आवरण डाल कर चले गये। ऐसे महान साधक के विषय में अधिक लोग कुछ जान भी नहीं पाये। आपको उनकी एक संपूर्ण जीवनी लिखनी होगी। आपको यह लिखना ही होगा, क्योंकि आप गत पचीस वर्षों से उनके अंतरंग सखा थे, उनके जीवन के हिस्सेदार भी रहे हैं।"

मैंने उत्तर दिया, "आप तो कहते हैं, परन्तु मुझे लिखने में भय हो रहा है।"

"क्यों, भय क्यों ?"

"जो मैंने प्रत्यक्ष किया है, और जिन तथ्यों को जानता हूँ, तथा उनसे मैंने जो उपलब्धियाँ की हैं, उससे मैं यही कह सकता हूँ कि श्री युक्त कालीदा के अध्यात्म जीवन के पीछे एक विराट् ईश्वरीय भूमिका रही है । उन तथ्यों को सविस्तार लिखने पर लोग विश्वास नहीं करेंगे, गोपीनाथ दा । यही मेरे भय का कारण है ।

आचार्य के नयन द्वय उस समय दीप्त हो उठे । उठ कर बैठ गये तथा उत्तेजित स्वर में उन्होंने कहा, "आप कालीदा की सारी कथा लिखें । मैं और आप तो विश्वास करेंगे ? और कोई विश्वास करे या न करे !"

कमरे के अंदर इसी समय कुछ जिज्ञासु भक्त तथा गवेषक आकर बैठ गये । सभी देर तक चुपचाप बैठे रहे । नीरवता भंग करते हुए गोपीनाथदा ने शांत तथा स्निग्ध स्वर में कहा, "आप एक बात समझते क्यों नहीं? कालीदा के पास हजार-हजार भक्त तथा दर्शनार्थी आये, परन्तु उनके जैसे विराट् पुरुष की उपलब्धि कितने लोग कर गये ? अगर आप उनकी जीवनी लिखेंगे तो कुछ लोग उसके तथ्य तथा माहात्म्य का श्रवण, मनन तथा चिंतन कर पायेंगे । इससे कुछ लोगों का कल्याण अवश्य होगा ।"

श्रद्धेय आचार्य की बात मैं नहीं रख पाया । योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय की जीवनी लिखना मुझसे संभव नहीं हो सका ।

फिर भी, गोपीनाथदा की कई बातों का मैंने स्मरण रखा है । कुछ भक्त तथा जिज्ञासु स्मरण, मनन, चिंतन का सुयोग पायेंगे, इसी उद्देश्य से मैंने पिछली बार की 'हिमद्रि' के पूजा अंक में श्री युक्त कालीदा के संबन्ध में कुछ संस्मरण लिखे थे । इस बार उसकी अगली कड़ी यहाँ दे रहा हूँ ।

अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभूति तथा अंतदृष्टि से मैंने श्री युक्त कालीदा को एक ब्रह्म स्वरुप महात्मा तथा योगीश्वर के रुप में देखा था । इस ब्रह्म स्वरुपकता या भगवत्ता का प्रमाण व परिचय तीन विशिष्ट वातों से मिलता है।

इनमें एक है—उनकी कृपाधन मूर्त्ति; आर्त भक्तों के प्रति कृपा; मुमूक्षु और मुक्तिकामी भक्तों के प्रति उनके कृपा धारा की अविरल वर्षा ।

दूसरा वैशिष्ठ्य है—ऋषिकल्प महात्माओं अथवा ब्रह्मविदों की स्वीकृति तथा सहयोगिता ।

तीसरा—ईश्वर विरोधी, महाशक्तिधर साधकों का दमन । ये साधक कठोर तपस्या से उपलब्ध शक्तियों से मत्त हो: तथा प्रकृति वशीकरण की शक्ति से मत्त हो, ईश्वर के कर्त्तृत्व की उपेक्षा करते हैं, तथा सृष्टि को अपनी निजी कल्पना के अनुसार रुपान्तरित करना चाहते हैं, तथा बरवस सजाना चाहते हैं।

योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय के जीवन में भगवत्ता के इन तीन वैशिष्ठ्यों का स्फुरण हो गया था, यह मैंने देखा था। इस संबन्ध में अपनी स्मृति के आधार पर ही कुछ लौकिक तथा अलौ-किक तथ्यों का मैं उद्‌धाटन कर रहा हूँ।

ठाकुरिया गोविंद लेन में, रोग शय्या पर पड़ी सुश्री रानी भट्टा-चार्य को देखने, मैं तथा श्री युक्त कालीदा प्रायः जाया करते।

इसी प्रसंग में इस महिला का संक्षिप्त परिचय भी दे देता हूँ । श्री युक्त कालीदा के जीवन में आध्यात्मिक शक्ति की धारा का प्रवाह किया था, उनके 'बन्धु' या स्वयं ब्रह्म ने। हिमालय से उतर कर दिन अकस्मात् उनके जीवन में आ गये थे,तथा उन्हें एक विस्मय कर योगीश्वर के रुप में रुपान्तरित कर दिया था । इसी प्रकार 'बंधु' की पूर्ण कृपा, साधिका श्रीमती रानी भट्टाचार्य के जीवन में भी बनी हुई थी,-तथा वे एक विराट् ब्रह्मज्ञा के रुप में परिणत हो

गयीं थीं ।

वर्षों से मैंने इन महान तपस्विनी के सान्निध्य में रह कर उन्हें बड़ी निकटता से देखा था। उन्हें मैंने एक विस्मय जनक अध्यात्म सृष्टि के रुप में ही देखा था ! उन्होंने बहुत कम शिक्षा पायी थी । परन्तु मैंने देखा था कि शास्त्रीय चर्चा के प्रसंग में तर्क करते समय, वे वेद, उपनिषद् आदि परम तत्वों की अनायास व्याख्या कर देती थी।

मेरे कई अध्यापक बंधु इन साधिका के पास आते थे। रवीन्द्र-नाथ की किसी कविता या गान के प्रकृत तत्वों के विषय में कई बार कभी-कभी विचारों की झड़ी लग जाती। उस समय ये अर्धशिक्षित महिला बहुत सहज तथा निपुण भाव से उसकी प्रकृत व्याख्या करके सभी को विस्मित कर देती। ऐसे थे उनके पूर्वजन्म के संस्कार एवं सहज प्रज्ञा ।

कुछ समय तक इनसे परिचित हो जाने के बाद स्वभावतः ही मेरे मन में प्रश्न उठा–कि ये किस स्तर की सधिका हैं ? उस समय के कई उच्च कोटि के साधक व साधिकाओं का नाम उल्लेख करते हुए मैंने श्री युक्त कालीदा से एक दिन प्रश्न किया था कि "क्या ये उनके जैसे ही योग शक्तियों को धारण करती हैं ?"

प्रश्न को कालीदा टाल गये और अन्य विषयों पर बातचीत करने लगे। दूसरे दिन फिर कालीदा से मुलाकात हुई । हँस कर उन्होंने कहा, "रानी के अध्यात्म शक्ति के विषय में जो प्रश्न आपने कल उठाया था, उसका जवाब 'बंधु' ने स्वयं आज प्रातः दिया है । इस संबन्ध में मैंने उनसे कोई प्रश्न नहीं किया था । परन्तु वे सर्वज्ञ हैं, इसलिये उन्होंने स्वयं इस प्रसंग को उठा कर प्रसन्नता पूर्वक हँसते हुए कहा,"प्रमथ से कहो, जिन साधक-साधिकाओं का उल्लेख उसने किया था, वैसे कई हजार को आंचल में बाँध कर यह रानी भट्टाचार्य घुमा सकती हैं ।" उसके बाद 'बंधु' ने एक और विस्मय जनक बात कही, "एक नवीनतर सृष्टि यज्ञ की पूर्णाहुति देने के

लिए तुम आये हो, किन्तु इस यज्ञ के होमकुण्ड की स्थापना इसी रानी ने की है। उसका योगदान अतुलनीय है। किंतु उसका कार्य शेष होते ही, वह लोक-त्याग कर देगी और उसे किसी के लिए रोकना संभव नहीं होगा।"

अस्वस्थता का समाचार पाकर उस दिन कालीदा तथा मैं ठाकुरिया स्थित भवन में रानी को देखये गये थे। जाने पर देखा कि बंधुवर हेम सोमदा सपत्नीक वहाँ उपस्थित हैं। ये दोनों ही इन तपस्विनी को 'मां' कह कर पुकारते हैं, तथा मां जैसी ही श्रद्धा तथा भक्ति करते हैं। वहाँ रानी दी के अंतरंग भक्तों के साथ, प्रभा भाभी भी उपस्थित थीं।

उपस्थित व्यक्तियों में एक सज्जन पुरी भ्रमण कर वापस आये हैं और पूर्ण आवेग से अपने पर्यटन की कहानी प्रस्तुत कर रहे हैं।

रोग शय्या पर सोयी हुई, मधुर हास्य विखेरती हुई रानी दी ने प्रश्न किया, वहाँ तो आपने सभी देखा सुना, परन्तु असली बात जगन्नाथ, बलराम मंदिर के विग्रह का तत्व व माहात्म्य क्या आप समझ पाये ?"

"विग्रह का तत्व तो बहुत सरल है। जगन्नाथ हैं, स्वयं श्री कृष्ण, बलराम उनके अग्रज और सुभद्रा, उनकी बहन। सभी वहाँ प्रेम तथा भक्ति के प्रतीक के रुप में विराजमान हैं। इसके अलावा आधुनिक शोधकर्ता तो यह कहते हैं, कि ये विग्रह पहले अनार्य शवरों के उपास्य थे। उसके बाद ये भक्तिवादी आर्य साधकों के आराध्य हुए। और अनेक लोगों के मत से ये बौद्ध त्रिरत्नों के प्रतीक हैं—बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रतीक।"

मधुर हँसी हँसते हुए, रानी दी ने कहा, "बिलकुल ऐसा ही नहीं है, जगन्नाथ विग्रह का तत्व और गंभीर तथा गुह्य है।"

अब काली दा बातचीत में सम्मिलित हुए। पूरी से वापस आये लोगों की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए उन्होंने कहा,—"जगन्नाथ,

बलराम तथा बीच में हैं सुभद्रा। ऐसा ही तो आप मानते हैं ? किंतु महाशय, शिव के पास उनकी शक्ति दुर्गा रहती हैं, नारायण के पास लक्ष्मी तथा कृष्ण के वाम भाग में रहती हैं, राधा या रुकमिणी। फिर किस युक्ति से कृष्ण के साथ उनकी बहन सुभद्रा हैं ? बहन क्या कभी पुरुष की शक्ति होती है । यह सब केवल मूर्खों की कल्पना मात्र है ।"

अपनी स्वाभाविक तथा पुरुषोचित मुद्रा में बात शेष करके कालीदा ने सिगरेट के कश खींचना शुरु कर दिया ।

अब रानी दी ने अपने स्निग्ध मधुर स्वर में पुरी से वापस आये महानुभावों से, कहने लगी, "देखो भाई, पुरी की ये त्रिमूर्त्तियाँ, कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा नहीं है, शवरों द्वारा पूजित होने पर भी वे शवरों की देवी नहीं हैं। दर असल वे सत्चित् तथा आनंद की प्रतीक पर ब्रह्म की मूर्त्तियाँ हैं। परा शक्ति, परा ज्ञान और परा आनन्द मूर्त हो उठा है,इन त्रिमूर्त्तियों में इसके अलावा तीनों मूर्त्तियाँ अरुप तथा निराकार ब्रह्म की प्रतीक हैं । इसी कारण शिल्पियों ने ठीक तरह से आंख, नाक, मुँह, हाथ-पाँव अच्छी तरह नहीं बनाया है। जिन लोगों ने पुरी मंदिर के विस्मयकारी शिल्प की रचना की है, जिनमें प्रस्तर की इतनी सजीव मानव मूर्त्तियाँ हैं, क्या इच्छा होने पर वे तीन देव मूर्तियाँ तैयार नहीं कर सकते थे ? वे आनायास ही कर सकते थे । इस युग के मनुष्यों का भाग्य अच्छा है, कि भगवान निराकार रुप से ही मर्त्यलोक में आने वाले हैं । उसी की अभिव्यक्ति पुरी के दारु ब्रह्म मंदिर में पहले से ही की गई है । इसी कारण पुरी को महाधाम कहते हैं ।

सिद्ध तपस्विनी की व्याख्या, आश्चर्यजन तथा अनुभूतियों से पूर्ण थी। उपस्थित समुदाय अवाक् होकर विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देख रहा था ।

काफी समय हो गया था। सभी एक-एक करके उठ गये। रानी दी के कमरे में केवल मैं तथा श्री युक्त कालीदा रह गये।

सहसा कालीदा बोल उठे, "रानी, तुम्हारी कुछ दिनों के लिए पुरी जाने की प्रबल इच्छा है। अच्छा तो है, फिर एक बार हो आओ।"

उस समय रानी दी घर से बाहर भी नहीं निकल पाती थीं। बहुत दिनों से रुग्ण हो जाने के कारण उनकी ऐसी अवस्था हो गयी थी। हँस कर उन्होंने कहा, "यह शरीर अब वहाँ नहीं जा पायगा।"

"अवश्य जा सकेगा। तुम्हारी स्वयं जरा सी इच्छा कर देने मात्र से तुम्हारा रोग एक मुहूर्त में ही न जाने कहाँ चला जायगा। मैं तो जानता हूँ कि एक बार संकल्प कर लेने मात्र से तुम क्या नहीं कर सकती हो ?"

"अपनी इच्छाओं का उत्सर्ग तो मैंने 'वंधु' के चरणों में कर दिया है। क्या उन्हें वापस किया जा सकता है ? कहो तो ?"

"ठीक है, फिर मैं ही कह देता हूँ। तुम शीघ्रा तिशीघ्र अच्छी हो जाओगी। कुछ दिनों के लिए पुरी हो आओगी। तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रमथ बाबू सब व्यवस्था कर देंगे। जाओ घूम आओ।"

सिगरेट की एक लम्बी कश लेते हुए कालीदा ने स्वगत ही कहा, "वह महाधाम है, दारु ब्रह्म का धाम। वहाँ तुम्हारी जैसी ब्रह्मविद् महिला के जाने पर शरीर तो वहीं टूट जायगा। ऐसा हो, तब भी वहाँ तो जाना ही होगा।"

मेरी तरफ देख कर गंभीर स्वर में उन्होंने कहा। आप राह खर्च के लिए पैसा तथा और सब व्यवस्था कर डालें। एक बार घूम ही आयें।

कहते हुए सहसा कालीदा उठ खड़े हुए। निखिल भाई वगैरह उसी समय बाजार से वापस आये थे। उन्हें भेजकर स्टेशन के

रेस्ट्राँ से, दो अंडे का आमलेट उन्होंने मँगवाया । उसके बाद प्लेट रानी दी की ओर खिसकाते हुए सहास्य कहा, 'सब अभी खा जाओ—प्रमथ बाबू की नजर पड़ने से पहले ।"

विनोद करते हुए मैंने उत्तर दिया, "मैं तो अनासक्त ही रहूँगा! किंतु जिस रोगिणी को डा० विधान राय और डा० शिवपद भट्टाचार्य ने हताश होकर छोड़ दिया था, उसे डबल अंडे का आमलेट खिला कर परलोक यात्रा की गति आपने डबल कर दिया है, यही बात सोच रहा हूँ ।"

"अरे नहीं–नहीं। ठीक है ।" जोर से बोल उठे कालीदा। "रानी, इसे खा लो तो। कल सुबह से ही तुम्हारा रोग कुछ दिनों के लिए छुट्टी ले लेगा। तुम भी छुट्टी लेकर पुरी से घूम आओ ।"

वही हुआ। श्रेष्ठ डाक्टरों से परित्यक्त रोगिणी डबल अंडे के आमलेट की औषधि खाकर स्वस्थ हो गयी, एक मास से अधिक के लिए भुवनेश्वर तथा पुरी इच्छानुसार हो भी आयीं।

फिर भी मैंने देखा था, वहाँ जाने के बाद–विशेषकर पुरीधाम की, महाधाम की चिन्मय ज्योति ने उन्हें आच्छन्न कर रखा था । प्रायः ही मुझसे कहती, "यह देह अब और आवश्यक है क्या ?"

१९४३ साल में ये महान तपस्विनी-जिन्हें स्वयं ब्रह्म, 'बंधु' 'ब्रह्म-ती, वेद-माता और गायत्री कह कर उल्लेख करते थे—देह का सर्वदा के लिए परित्याग कर गयीं ।

इस प्रसंग में श्री युक्त कालीदा की एक और कृपा-लीला का स्मरण हो आया है। पुरी धाम का माहात्म्य, अरुप ब्रह्म का प्रतीक तत्व यह सब उस दिन सुन कर बंधुवर हेम सोमदा, कुछ दिन वहाँ व्यतीत करने के लिए व्यग्र हो उठे।

प्रायः ही मेरे साथ इस संबन्ध में बात करते और बीच-बीच में श्री युक्त कालीदा की अनुमति पाने का प्रयत्न करते,—"अगर आप निषेध न करें, तो मैं भी एक बार वहाँ घूम आऊँ ।"

थोड़े दिन पहले ही उन्हें एक लम्बी बीमारी से छुटकारा मिला था। इसीलिए कालीदा ने निषेध करते हुए कहा, "बाहर जाने से फिर जाने किस विपत्ति में पड़ जायगें, और फिर मुझे ही उस हंगामें को ठीक करना होगा। नहीं, जाने का कोई प्रयोजन नहीं है।"

किंतु सोमदा छोड़ने वाले जीव नहीं थे। बार-बार अपनी यात्रा का प्रश्न उठाने लगे। अंत में कालीदा को स्वीकृति देनी ही पड़ी। किंतु उन्होंने एक शर्त लगा दो, "अकेले जाना नहीं हागा, अगर जाना ही है–प्रमथ बाबू को अवश्य ही साथ ले लें।"

हेमदा ने मुझे आ पकड़ा। बहुत अधिक आग्रह नहीं करना पड़ा। कारण श्री विग्रह जगन्नाथ देव और पुरी का समुद्र, दोनों का आकर्षण मेरे लिये सदा से ही प्रवल रहा है। इसके अलावा आनंद मूर्त्ति, सरल, जिदांदिल पुरुष हेम सोमदा के साथ केवल श्री युक्त कालीदा के विशिष्ठ भक्त के नाते ही नहीं, अपितु मेरी व्यक्तिगत अंतरंगता भी थी। 'आउटिंग' आनंददायक होगी, यह सोच कर मैं तुरत तैयार हो गया।

पुरी पहुँच कर हम दोनो 'सी व्यू' होटल में ठहरे। समुद्र के पास ही एक 'एनेक्सी' है जिसमें दो कमरे हैं—जिन्हें पाकर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ।

दोनों, नित्य ही परम उत्साह से नाना दर्शनीय स्थान देखते तथा समुद्र तरंगों से खेलते हुए स्नान करते। चार दिन बहुत आनंद से कट गये। पांचवें दिन एक महान विपत्ति में पड़ा। जवानी में सोमदा चुस्त 'स्पोर्टस् मैन' थे। उन दिनों प्रौढ़ावस्था में भी 'स्पोर्टसमैन' सुलभ उत्साह कभी-कभी जाग्रत हो उठता था।

उस दिन पूर्णिमा थी। समुद्र उत्ताल तथा उन्मत्त हो उठा था। बड़े-बड़े 'ब्रेकरों' के चपेट से क्लान्त होकर अनेक लोगों ने जल्दी ही स्नान समाप्त कर दिया था। थोड़ी ही देर में मैं भी किनारे चला आया। किंतु हेम सोमदा को हटाना संभव नही

ना । तरंगों के उद्दाम नृत्य से वे भी मत्त हो उठे हैं । काफी समय बाद, अधिक क्लान्त हो जाने पर वे वापस आये।

मध्याह्न भोजन के बाद लेटा हुआ विश्राम कर रहा था । इसी समय बगल वाले कमरे से सोमदा की वेदनार्त्त चीख कान में पड़ी । जाने पर देखा, बिस्तर पर पड़े छटपटा रहे हैं। हाथ हृदय पर रखकर कहा, 'असह्य यंत्रणा ।

उसी समय बाहर जाकर शहर से एक डाक्टर साथ लेकर आया । बंगाली, साधारण एम० बी०—यहाँ इनकी 'प्रैक्टिस' सबसे अच्छी है। रोगी की कुछ देर तक परीक्षा करने के बाद डाक्टर मुँह गंभीर किये हुए, वरामदे में आकर खड़े हुए । मुझसे कहा, 'कारोनरी थ्रम्बोसिस,' अवस्था काफी चिंता जनक है ।"

व्यग्र होकर मैंने पूछा, "यहाँ के अस्पताल में 'रिमूभ' करने पर कैसा रहेगा।"

सिर हिला कर उन्होंने निषेध किया । यहाँ के अस्पताल की स्थिति अच्छी नहीं है । अच्छी चिकित्सा नहीं हो पायगी । रोगी को किसी तरह कलकत्ता पहुँचा देने पर बचने की संभावना है ।"

प्रत्युत्तर में मैंने कहा, "ऐसी संकटापन्न स्थिति में कलकत्ता ले जाना किस तरह संभव होगा ?"

"यही तो," कह कर डाक्टर ने एक नुस्खा लिख दिया । यह दवा तो शुरू कर दें। देखा जाय क्या होता है । अच्छा अब मैं चलूँ !"

फीस लेकर डाक्टर चले गये, तथा मैं असीम चिंता में पड़ गया ।

हम लोग पुरी के 'आफ सीजन' में, अर्थात् वर्षा के समय में आये थे। होटल में 'बोर्डर' भी बहुत कम थे । ऐसे समय में होटल के मालिक भी कलकत्ता घूमने गये हुए हैं । रसोईदार तथा नौकर गांजा पीते हैं, और सोते हैं। एक छोकरे से दवा

मँगवाई। रोगी को दवा खिलाया, परन्तु असह्य यंत्रणा से कोई त्राण नहीं मिला। ऐसे रोगी को बचाने के लिये आवश्यकता थी तो अच्छी चिकित्सा तथा नर्सिङ्ग की। परन्तु यहाँ मैं अकेला किस तरह उसकी व्यवस्था कर सकूँगा? सोचने लगा, नर्सिङ्ग के लिए दो-चार आदमियों की व्यवस्था करनी होगी।

हेम सोमदा हैं, ग्रामोफोन कम्पनी के स्टूडियो मैनेजर। ऐसी दशा कि प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध संगीत शिल्पियों की दृष्टि में वे 'डमी गाड' जैसे ही हैं। पुरी तट पर घूमते हुए देखता कि काफी लोग उनको देखकर उनकी अभ्यर्थना करते। उद्देश्य केवल इतना ही होता कि उनकी कृपा से एकाध गाने का रेकार्ड किसी तरह निकलवाना सम्भव हो सकेगा या नहीं? पास के ही एक होटल में कलकत्ता के एक जनप्रिय शिल्पी आए हुए हैं। जान बूझ कर ही उनका नाम नहीं ले रहा हूँ। ये सज्जन कई दिन, दोनों समय घंटों हेम सोमदा के कमरे में बैठकर अड्डा दे चुके हैं और उनका मनोरंजन कर चुके हैं।

अंततोगत्वा उन्हीं के पास जा पहुँचा। सोमदा के रोग की संकटापन्न स्थिति वता कर उनसे कहा, "भाई अगर आप एक-दो रात नर्सिंग में सहायता करें तो बड़ी कृपा होगी।"

गायक ने टिन खोलकर एक कीमती सिगरेट का लम्बा कश खींचते हुए कहा, "सोमदा की यह अवस्था है? बड़े ही दुख की वात है, परन्तु भाई मैं तो आज ही कलकत्ता वापस जा रहा हूँ, वहाँ कुछ कार्य है।"

"एक-दो दिन रुक नहीं सकेंगे क्या?"

"वह कैसे संभव हो सकेगा भाई? वहाँ भी तो कार्य है।

समझ गया, यह काफी 'प्रैक्टिकल' लोगों जैसी बात थी। स्वस्थ, सबल तथा अधिकार संपन्न स्टूडियो मैनेजर मि० सोम को प्रसन्न करने के लिए वे काफी दूर तक जा सकते हैं, किन्तु मृत्यु की

ओर अग्रसर होते हुए मि० सोम के लिए उनके पास बिल्कुल समय नहीं है।

क्षुब्ध होकर वापस आ गया। प्रायः संध्या हो गयी है। रोगी की अवस्था और खराब होती जा रही है। होटल के 'बोआय' को पुकार कर उसे एक रुपया दिया और डाक्टर के पास भेजा कि एकबार और आकर देख जाय। डाक्टर ने जवाब दिया कि "वही दवा चलाने को कहो। मेरे जाने का कोई प्रयोजन नहीं है।" समझ गया कि डाक्टर रणभूमि छोड़कर पलायित हो रहे हैं।

रोगी के पास बैठकर समय-समय पर उन्हें दवा दे रहा हूँ तथा व्याकुल हृदय से यही सोच रहा हूँ कि अब क्या होगा ?

इस समय सहसा सोमदा फूट पड़े तथा उनकी आंखों से अश्रु-धारा गिरने लगी।

इतने दिनों की निकटतम मित्रता के बाद भी पहले कभी इस दृढ़चेता मनुष्य को इतना विचलित होते हुए देखा नहीं! रोते-२ उन्होंने कहा, 'प्रमथदा समझ रहा हूँ कि मेरा अन्त उपस्थित है। जाने के लिए मेरा मन सचमुच तैयार है। किन्तु दुःख केवल यह है कि जाने से पूर्व कालीदा का दर्शन करके उनकी चरण धूलि एक बार नहीं ले पाया।' अनवरत अश्रुधारा उनके कपोलों से बहती जा रही है।

सहसा बिजली कौंधने जैसी एक बात मेरे दिमाग में आयी। पुरी का जेनरल पोस्ट आफिस पास ही है। पिछले दिनों उसका बोर्ड देखा था। वहाँ से कलकत्ता 'ट्रंककाल' किया जाय। सोमदा से कहा, "आप धैर्य रखें। अभी मैं ट्रंककाल करके कालीदा को सारी स्थिति बता देता हूँ। देखिए तो इतनी देर से यह बात मेरे माथे में ही नहीं आयी।"

होटल के छोकरा नौकर को रोगी के पास बैठाकर जेनरल पोस्ट आफिस जा पहुँचा। सौभाग्य से आधे घंटे के भीतर ही कलकत्ता की लाइन मिल गयी। कालीदा इसी घर के एक हिस्से में रहते हैं,

परन्तु इस समय वे घर पर नहीं हैं। हेमदा की लड़की रेखा से ही फोन पर वात हुई, उसे सारी स्थिति समझा कर कहा, "कालीदा को सारी बाते कहना और उनसे एक बार यहाँ आने को अवश्य कहना।"

रोगी तथा मेरे दोनों के लिए ही यह रात यंत्रणादायक तथा डरावनी थी। मृत्योन्मुख अति प्रिय मित्र के पास सारी रात बैठा हूँ। डाक्टर भाग गये हैं तथा सेवा सुश्रुषा करने के लिए कोई आदमी पास नहीं है।

दूसरे दिन सबेरा होने के बाद देखा होटल के द्वार पर एक टैक्सी आकर रुकी। श्रीयुक्त कालीदा प्रसन्न मुख उस पर से उतर रहे हैं। साथ हीसाथ मेरे मन का 'स्ट्रेन' तथा दुःश्चिंता न जाने कहाँ गायब हो गयी। जान में जान आयी। अब हेमदा के सम्बन्ध में मेरा कोई दायित्व नहीं रहा।

घर में घुसते ही कालीदा ने मुझ से प्रश्न किया, "क्यों, आपके रोगी की हालत अव कैसी है?"

साथ ही साथ उन्मुक्त हँसी!

दादा के दर्शन मात्र से हेम सोमदा की आंख तथा मुख उज्वल हो उठे हैं। अधरों पर मधुर मुसकान है तथा चक्षुओं से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है, जो कि पुलकाश्रु है।

"कैसे हैं हेमदा?" श्रीयुक्त कालीदा ने प्रश्न किया।

कृतज्ञता पूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर आवेग कंपित स्वर में रोगी ने उत्तर दिया, "आपका दर्शन मिल गया। अब मरने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। आनन्द पूर्वक विदा लूँगा।"

"अभी देह क्यों छोडेगें? परम वस्तु नहीं पायेंगे क्या? इसके अलावा सभी के विदा ले लेने पर मैं किसके साथ बातचीत करूँगा! नहीं-नहीं, विदा-विदा की कोई बात नहीं है। आप तो स्वस्थ हो गए हैं, अब उठ कर बैठिए। प्रमथ बाबू को आपने काफी कष्ट

दिया है, अब और अधिक की आवश्यकता नहीं है। आइये हम सभी मिल कर एक अच्छी 'छोटा हाजिरी' खाँय।"

मेरी ओर देखकर कालीदा ने कहा, 'बोआय को बुलाइये और हम सभी के लिए सारी चीजें लाने के लिए कहिये, तबतक मैं बाथरुम से हाथ पैर धोकर, तुरत आ रहा हूँ।"

कालीदा के कमरे से बाहर होते ही मैंने हेम सोमदा से जिज्ञासा की, "अब कैसे हैं।"

स्निग्ध तथा मधुर हास्य ( यह हँसी, सोमदा की व्यक्तिगत तथा निराली थी )बिखेरते हुए उन्होंने कहा, "व्यथा, वेदना सब जैसे जादू से समाप्त हो गयी है। अब केवल दुर्बलता शेष है—भीषण दुर्बलता।"

'छोटा हाजिरी' आ गई हर एक के लिये चाय,एक जोड़ा टोस्ट और दो अंडों का पोच। कालीदा ने सभी को आज्ञा दी, "खाना आ गया है, देर करने की आवश्यकता नहीं है, सभी शुरु करें।"

सोमदा ने सकुँचाकर हंसते हुए कहा,"मैं क्या यह सब खाऊँगा? मैं केवल शुद्ध चाय ही पीऊँगा।"

"पेट में भूख और मुख पर संकोच–और तमाशा नहीं कीजिये। चटपट सब खा डालिये।" कालीदा ने कहा।

जलपान समाप्त होने पर उन्होंने कहा, "हेमदा ने प्रमथ बाबू को काफी कष्ट दिया है, अब उन्हें छोड़ दीजिये। हम दोनों थोड़ा शहर में घूम-फिर आवें। आप तब तक गीता के मर्म के विषय में चिंतन करते रहें।"

सोमदा की गीता पाठ में बड़ी निष्ठा थी तथा चामात्कारिक ढंग से उसकी व्याख्या करने में भी उनकी यथेष्ठ प्रतिभा थी।

अब हम दोनों, कालीदा तथा मैं, एक साइकिल रिक्शा पर बैठ कर, शहर घूमने निकले। अनेक दर्शनीय स्थानों को देखने के बाद हम दोनों श्री जगन्नाथ के सिंह द्वार पर उपस्थित हुए।

मैंने कहा, "चलिये, अव श्री विग्रह का दर्शन भी कर आवें।"

"ठहरिये—अभी ठहरिये न।" उन्होंने हँसते हुए ( सलज्ज ) उत्तर दिया"। इस हँसी के भेद से मैं परिचित हूँ । सहसा मेरे मन में एक छल पूर्ण इच्छा जगी। बार-बार विग्रह दर्शन के लिए जोर देने लगा। बोला, "यह महाधाम है। यहाँ सत्-चित्-तथा आनंद के विग्रह विराजमान हैं। यहाँ भारत का श्रेष्ठतर पौराणिक निर्देश है। नहीं, एक बार भीतर अवश्य चलें। दोनों आदमी दर्शन कर आवें।"

अंत में वे राजी हुए। भीतर घुसकर दर्शनादि शेष हुआ। मंदिर मे बाहर निकलते हुए देखा, दादा की भावाविष्ठ एवं अभूतपूर्व मूर्त्ति। शरीर का रंग ताँवे जैसा हो उठा है। दोनों चक्षुओं में स्वर्गीय ज्योति की झलक है। दिव्य आवेश में उनका विशाल शरीर थरथर काँप रहा है।

उसके बाद वे भूमि पर ही लोट पड़े। सिंह द्वार तक सारे रास्ते और सीढ़ी एवं श्रीआँगन में सर्वत्र उनका साष्टांग प्रणाम चालू हो गया। दादा की धवल धोती तथा खद्दर का कुरता धूल मलिन हो गये। इसके अलावा, कालीदा की यह भावप्रमत्त अवस्था ! मुझे भी भीतर से पश्चात्ताप हुआ, बोध हुआ कि दर्शन के लिये यदि मैं जोर न देता तो अच्छा ही होता। फिर भी उस समय जो देव दुर्लभ दृश्य मैंने देखा था, उसे देखने का सौभाग्य मनुष्य को शायद ही मिल सके।

दूसरे दिन श्री युक्त कालीदा, कलकत्ता वापस चले गये। हेम सोमदा, उस समय भी अत्यन्त दुर्बल थे। मुझे उसके बाद भी कई दिनों तक पुरी में रुक जाना पड़ा। बाद में कलकत्ता से हमारे बंधु डा० सुधेन्दु सेन तथा हेमदा के पुत्र एवं पुत्री, आकर उन्हें वापस ले गये।

टेलीफोन करके रोगी के पास कालीदा को बुला लेने और मरणासन्न

रोगी को रोगमुक्त होने की कहानी का वर्णन अभीतक मैंने किया है। इसके अलावा इन शक्तिधर पुरुष ने स्वयं कई सौ मील दूर से अपने आश्रितों को फोन करके रोगी की दशा जानने की चेष्ठा की है, तथा उनके भयानक व्याधि को अनायास ही विनष्ट कर दिया, ऐसी घटनाएँ भी मैं जानता हूँ।

१९६२ साल की बात। श्री मती विरजा देवी, हमारी एक घनिष्ट आत्मीया हैं। अत्यन्त धर्मप्राण तथा चरित्रवान महिला हैं वे। उनके पुत्र गोरखपुर में एक्सक्यूटिभ इन्जिनियर है, तथा वे उनके साथ वहीं रहती थीं। अचानक वाथरुम में पैर फिसल जाने से वे गिर पड़ीं और उनके कमर की बड़ी हड्डी टूट गयी। अवस्था साठ से ऊपर होगी। इस उम्र में पैर की बड़ी अस्थि टूट जाने पर जुड़ना बड़ा कठिन होता है। कई एक्स—रे प्लेट लिये गये। बड़े-बड़े सर्जनों ने देखा तथा विधिवत् चिकित्सा प्रारंभ की गयी। परन्तु विशेष प्रगति नहीं हो पायी। इस अवस्था में हड्डी कमजोर हो जाती है, तथा 'पिनिंग' करना भी संभव नहीं हो सकेगा। अतएव काफी दिनों तक विस्तर में ही पड़े रहना होगा। भविष्य में भी चलने फिरने लायक हो जायंगी या नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता।

विरजा देवी अत्यन्त कर्मिष्ठ महिला हैं। स्वभावतः हड्डी टूटने के फलस्वरुप सोये-सोये तथा बड़े-बड़े सर्जनों की बात सुनते-सुनते उन्हें नैराश्य ने घेर लिया था। प्रायः एक मास बाद उन्होंने, कलकत्ते, अपनी कन्या को एक विस्तृत पत्र लिखा जिसमें अपनी अस्वस्थता का सविस्तार वर्णन था। दुखी होकर उन्होंने यह भी बात लिखी, "अब तक लाचार नहीं थी और स्वाभाविक रुप से चल फिर लेती थी। अब अगर यह हड्डी नहीं जुड़ती है तो शेष जीवन मुझे असहाय अवस्था में बिछावन पर सोये-सोये काटना पड़ जायगा और दूसरों पर पूर्णतया आश्रित हो जाना होगा। इससे तो मर जाना ही अच्छा होता।"

कलकत्ते में बैठी कन्या, माँ के इस शोकाकुल पत्र को पढ़ रही हैं तथा दुख और सहानुभूति से कातर होकर रो रही हैं।

विरजा देवी की यह कन्या, श्री युक्त कालीदा की काफी घनिष्ट तथा स्नेह भाजन भक्त हैं। सांसारिक एवं पारमार्थिक दोनों क्षेत्रों में यह महिला उनके ऊपर सर्वथा निर्भर शील हैं।

ठीक जिस समय वे मां के लिए वेदनार्त्त हो उठी थीं, उसी समय, उनके फोन की घंटी बज उठी। 'ट्रंक काल'-और वह है काशी से।

हड़बड़ा कर वे फोन के पास पहुँची। कानों में श्री युक्त कालीदा का कण्ठ स्वर पड़ा। प्रफुल्ल मन से बात कर रहे हैं। कभी आवश्यकता वश तथा कभी अनावश्यक, शुद्ध अपने मन की मौज में ही इस घर को फोन (ट्रंक द्वारा) कर लिया करते हैं।

दो चार बातें कर लेने के बाद ही, उन्होंने प्रश्न किया, "तुम्हारी आखों में आँसू कैसे देख रहा हूँ ? क्या हुआ है, बताओ तो ?"

इधर से प्रत्युत्तर मिला, "अभी माँ का एक पत्र मिला है। गोरखपुर, छोटे भैया के पास कुछ दिनों के लिए गयी थी। वहीं उन पर महान विपत्ति पड़ गयी है।" कमर की हड्डी टूटने की बात भी बतानी पड़ी।

कालीदा ने उत्तर दिया, "अरे, अभी भी मैं एक मनुष्य तो हूँ। इस बात को लेकर चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है।" इसके बाद अन्य सभी विषयों पर बात करने लग गये, जिनके लिये अकस्मात् कोई ट्रंक काल नहीं करता।

दूसरे दिन ही, कन्या ने विरजा देवी को आश्वस्त करते हुए एक पत्र लिखा, "माँ, तुम्हारे कमर की हड्डी टूट गयी है, और उसका जुड़ जाना संभव नहीं हो सकेगा, तथा तुम्हें बराबर बिछावन पर ही रहना होगा, यह सोच-सोच कर मन मलिन मत करो। एक

महान ऋषि श्वर महात्मा से तुम्हारे विषय में बात हुई है । सुनने के बाद उन्होंने जो कहा है, उससे तो मेरा दृढ़ विश्वास है। तुम्हारी इस रोग से बड़ी आसानी से मुक्ति हो जायगी । इन महात्मा की योग विभूतियों की कोई सीमा नहीं है । इसे मैंने बहुत सी बातों में प्रत्यक्ष रूप से देखा है । इसके अलावा हम लोगों के प्रति इनका स्नेह तथा कृपा बराबर ही रही है।"

दो मास बाद विरजा देवी अनायास ही स्वस्थ हो गयीं। कन्या को सूचना दी "अब मैं स्वाभाविक रूप से चल फिर रही हूँ । सभी नित्य कर्म भी स्वयं कर रही हूँ। यही नहीं, आवश्यकता होने पर पानी से भरी बाल्टी भी ले जा सकती हूँ ।"

श्री मती विरजा देवी की अवस्था इस समय पचहत्तर वर्ष है । आज तक उनके टूटे हुए कमर के कारण कोई समस्या नहीं पैदा हुई ।

ऐसे ही बहुत से स्थलों में श्री युक्त कालीदा की दिव्य कृपा मैंने देखी है जहाँ उस कृपा से प्रभावित आर्त या मुमुर्षव्यक्ति को उसका ज्ञान भी नहीं होता ।

पन्द्रह सोलह वर्ष पुरानी बात । "हिमाद्रि" कार्यालय में श्री युक्त कालीदा अपने निर्दिष्ट चैम्बर में आकर बैठते थे । इस समय बहुत से भक्त तथा मुमुक्षु उनसे साक्षात्कार करने का सुयोग पाते ।

एक बार देखा, हम लोगों से अपरिचित एक तरुणी कई दिनों से उनसे भेंट करने आ रही है। वे भी उसको स्नेह तथा आदर दे रहे हैं। आते ही काफी तथा काजू खिलाते हैं ।

एक दिन मुझसे कहा, "यह लड़की कौन है, जानते हैं ? इसका नाम है गौरी। यह मेरे पुराने प्रोफेसर की लड़की है । १६२५ साल में, जब मैं रंगपुर कालेज में पढ़ता था, तब इन प्रोफेसर साहेब पर बड़ी श्रद्धा रखता था। केवल मैं ही नहीं, सभी रखते थे । दिव्य

कांति, तथा शांत गंभीर भाव, देखते अनायास श्रद्धा हो जाती थी। मैं उस समय आई० ए० क्लास का छात्र था। उन्हीं दिनों उन्होंने मेरे भविष्य के आध्यात्मिक जीवन के संबन्ध में एक भविष्यवाणी की थी, जिसे सोच कर भी आश्चर्य होता है।"

उत्सुक होकर मैंने कहा, "आपके संबन्ध में भविष्यवाणी की थी? तब तो वे साधारण मनुष्य नहीं थे। बताइये तो, उस समय उन्होंने क्या कहा था?"

"कालेज में एक डिबेटिंग क्लब था। छुट्टी होने के बाद उसमें नाना विषयों पर वाद—विवाद होता था। अनेक छात्र तथा अध्यापक उसमें उपस्थित रहते। एक दिन वाद-विवाद में मैंने भी भाग लिया। उस समय मेरी लेखन तथा वक्तृता-शक्तियाँ दोनों ही अच्छी थीं। उस दिन के विषय का तो ध्यान नहीं है, परन्तु समाज, धर्म या संस्कृति के विषय में ही कुछ था। कुछ देर तक भाषण देकर मैं बैठ गया। डिबेट समाप्त होने पर मेरे उन्हीं श्रद्धेय प्रोफेसर महोदय ने मुझे अपने घर बुलाया। कुछ देर तक मेरी ओर अपलक देखते रहे, फिर कहा, "कालीपद, तुम्हेंमैं एक बात बता रहा हूँ, और विश्वास के साथ कहता हूँ कि भविष्य में तुम एक श्रेष्ठ योगी होगे। तुम्हारे नेत्र, मुख तथा भाषण देने की भंगी देख कर ही मैं यह बात जोर देकर कह रहा हूँ।'

"इतने दिनों पहले क़ालेज के एक अध्यापक ने आपसे यह बात कही थी? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" मैंने अपना विचार व्यक्त किया।

कालीदा ने कहा, "ऐसा लगता है, अध्यापक महाशय गोपन रुप से साधन-भजन करते थे। साथ ही पवित्रात्मा भी थे। ऐसे लोगों में एक 'इनट्यूशन' भी होता है। इसीसे संभवतः वे यह बात कह पाये।"

कई महीने बाद की बात। मेरे लघु रूप एवं 'हिमाद्रि' पत्रिका के विशिष्ट सहकारी, सुप्रकाश, को बुलाकर एक दिन कालीदा ने व्यग्र होकर कहा, "गौरी का कुछ समाचार तुम्हें मिला है ? कैसी है वह ?"

सुप्रकाश उसका दूर का संबन्धी है, इसीलिए उसे ही उसके घर पर जाने के लिए कहा। दूसरे ही दिन समाचार मिला कि गौरी मरणासन्न अवस्था में है । 'किडनी' की भीषण बीमारी से वह ग्रस्त है । बड़े-बड़े डाक्टर आये हैं, यम और मनुष्य की लड़ाई चल रही है।

दो दिन बाद सुप्रकाश ने कहा, आज भी मैं गया था । कलकत्ता के एक प्रथम श्रेणी के डाक्टर ने रोगी को देखा था । बाहर आकर उन्होंने कहा, "बचने की कोई आशा नहीं है । 'यूरीमिया' शुरू हो गया है । अधिक से अधिक अड़तालीस घंटे का समय है" ।

दृढ़ स्वर में कालीदा ने कहा, "बड़े डाक्टरों की बात रहने दो। नहीं-नहीं, उसे मरने नहीं दिया जा सकता ।" सुप्रकाश को उन्होंने एक साधारण मुष्टि योग बतला दिया। तथा निर्देश दिया कि उसी दिन उसके घर जाकर किसी बहाने से उसे रोगिणी को खिला दे ।

निर्देश का पालन हुआ और साथ-साथ रोगिणी की दशा में विस्मयकर परिवर्तन हो गया। प्राणघाती 'यूरीमिया' तो गया ही, साथ ही रोगिणी पूर्णतया स्वस्थ हो गयी ।

कलकत्ते के जिन विख्यात डाक्टर ने कहा था कि अड़तालीस घंटे से अधिक रोगिणी बच नहीं सकती है, वे बाद में काशी में ही रह कर श्री युक्त कालीदा के घनिष्ठ सानिध्य में हैं, तथा उनके स्नेह से आवद्ध हैं। सुप्रकाश ने उन्हें एक बार काशी में पकड़ा था, "दादा, उस 'यूरीमिया'की रोगिणी को क्या कहा,था याद है ?

वह श्री युक्त कालीदा की कृपा स्वरुप बच गयी एवं विवाह करके अपनी गृहस्थी में लगी हुई है।" डाक्टर ने सलज्ज भाव से उत्तर दिया था, "महात्माओं की योग विभूति के सामने हम लोगों के चिकित्सा विज्ञान का मूल्य ही क्या है, भाई ?"

अब श्रीयुक्त कालीदा की योगीश्वर सत्ता तथा ईश्वरीयता के संदर्भ में कुछ कहूँगा। उससे पहले संक्षेप में यह भी कह दूँ कि किस तरह वे स्वयं भगवान या स्वयं ब्रह्म की पकड़ में आ गये।

उस समय कालीदा, सपरिवार बेहाला में रहते थे। किंतु अधिक समय वे मेरे फ्लैट में या अपने चैम्बर में ही व्यतीत करते थे। मैं भी प्रायः उनके बेहाला स्थित मकान में 'वीक एन्ड' विता आता था।

उस दिन बालीगंज के त्रिकोण पार्क के समीप स्थित मेरे फ्लैट में कालीदा आये हुए, हैं। सारा दिन यहाँ का कार्य करेंगे तथा रात्रि में भी यहीं रुकेंगे।

रात्रि के भोजन के बाद हम दोनों अगल-बगल दो चारपाइयों पर सोये हुए हैं। साहित्य, धर्म, राजनीति, सभी विषयों पर जोरदार बातचीत हो रही है, तथा साथ ही पैकेट पर पैकेट सिगरेट शेष होता जा रहा है। कालीदा की तरह ही, मैं भी उन दिनों 'चेन स्मोकर' था। बातचीत में ही कब रात के एक वज गये, यह पता ही नहीं चला।

सहसा राजनीति की किसी बात को लेकर दोनों में मतभेद का सूत्रपात हो गया। दो अभिन्न मित्रों के जीवन में जैसे यह अनिवार्य संकट उपस्थित हो गया।

अनायास पास वाले खाट से कालीदा धड़ाम से बीच में गिर गये, एक दम निश्चल तथा निस्पन्द। शरीर एक दम शिथिल था, यह मूर्च्छा है या और कुछ ? ऐसे बलिष्ठ तथा इच्छा-शक्ति संपन्न पुरुष के लिये तो ऐसा होना संभव नही है !

प्रायः घंटे भर बाद सहसा देखा कि एक अत्युज्वल शुभ्र ज्योति-पिण्ड, उनके ब्रह्मांड से निकल कर मेरे कमरे की खिड़की के रास्ते क्षण भर में अदृश्य हो गया।

चौंक पड़ा, यह क्या दैवो इन्द्रजाल है ?

आधे घंटे बाद कालीदा का वाह्य ज्ञान लौट आया। दो–तीन सिगरेट फूकने के बाद वे स्वाभाविक रुप से स्वस्थ हो गये।

अब मैंने इस अलौकिक ज्योति पिण्ड के दर्शन की बात उनसे कही। उन्होंने कहा, "समझ गया, किसे आपने देखा है।"

मेरा आश्चर्य अभी तक कम नहीं हुआ था, मैंने कहा,"किसको से आपका तात्पर्य क्या है ? किसी व्यक्ति को क्या ? यह तो बड़ा ही अद्भुत रहस्य है।"

शांत स्वर में कालीदा ने कहना प्रारम्भ किया। "आपके साथ एक अखंड बंधुत्व का संपर्क मेरा हो गया है। इसी कारण व्यक्तिगत बात होने पर भी आपसे सभी बातें कहता हूँ। किंतु एक बात अभी तक मैंने आपसे छिपा कर रखी थी। यह है, अलौकिक राज्य की बात। आप विश्वास न करें, हँस कर उड़ा दें,इसी भय से अभी तक इसे गोपन रखा था।"

मैंने उत्तर दिया, "जैसे लौकिक वस्तु सत्य है, वैसे ही अलौकिक तथा सूक्ष्म स्तर की वस्तु भी सत्य ही है। मेरी दोनों पर ही आस्था है। आप सारी बातें बतलाइये तो ?"

इस समय रात के दो बज चुके हैं। परिवेश नीरव हो गया है। कालीदा ने कहना जारी रखा।

कई मास पूर्व, आपके ही चैम्बर में बैठकर अपना कुछ कार्य शेप कर रहा था। सहसा, 'पुश डोर' को धक्का देकर एक सुन्दर तथा सुनाम युवक उपस्थित हो गये।

मैंने पूछा, "क्या चाहिये ?—किसे ढूढ़ते हैं ?

"नहीं कुछ, नहीं-यूँही," कह कर मधुर हँसी हँसते हुए, कुछ मिनट तक मेरी ओर देखते रहे । उनके चक्षुओं तथा मुख पर नयन-मन-मोहक आनंद की स्पष्ट झलक थी। फिर जैसे अनायास वे आ गये थे, वैसे ही वहाँ से चले गये।

किंतु इस विस्मयजनक दर्शन, इस स्वर्गीय हास्य की तरंग ने मुझे उस समय अभिभूत कर लिया । एक अनास्वादित दिव्य आनंद की पूर्व तरंग जैसे मेरे देह-मन-प्राण को आप्लावित कर वहाँ लिए चली जा रही है ! मन ही मन यह भी सोचता हूँ-ऐसा एक दिव्य आनंद-प्रवाह तो जीवन में कभी आया नहीं । एक व्यक्ति का दर्शन क्या ऐसे विह्वल कारी आनंद तथा उन्माद की सृष्टि कर सकता है ? भान हुआ कि मुझ जैसे दृढ़ चेता मननशील मनुष्य को जो इस तरह क्षण भर में आप्लावित कर सकता है, वह साधारण मनुष्य नहीं हैं—वरन् एक लोकोत्तर पुरुष हैं ।

उसके बाद प्रायः विभिन्न पार्कों तथा मैदानों में साक्षात्कार होने लगा—उनकी निजी इच्छा के अनुसार ट्राम में, बस में, रास्ते में तथा आफिस में भी। एक दिव्य आनंद को उन्होंने मुझमें तरंगायित किया, और इस 'बेमकिंग'(Beaconing) को पाकर मैं निकल पड़ता और दर्शन होता । उसके बाद साहित्य, संस्कृति और आत्मिक तत्वों पर बातचीत चलती। बातचीत के समय यह स्पष्ट अनुभव करता कि ऐसा कोई तत्व या तथ्य नहीं है, जो मेरे बंधु को अज्ञात हो। केवल यही नहीं, वे अंतर्यामी हैं तथा असामान्य योग-विभूतियों के अधिकारी हैं, इसका भी प्रमाण बार-बार पाता ।

"इनका नाम क्या है, तथा पता क्या है ?" मैंने अनायास ही जिज्ञासा की।

कालीदा ने उत्तर दिया, "यही तो कठिन समस्या है जब भी साक्षात्कार होता है, दिव्य आनंद से अभिभूत हो उठता हूँ, इन सब प्रश्नों का ध्यान ही नहीं रहता । रानी (ठाकुरिया की

रानी भट्टाचार्य ) ने ये सारी बातें सुनी हैं, और सुनकर कहा है, "कालीदा, आपके बंधु मर्त्य लोक के नहीं हैं । आपका एक शुद्ध आधार है, विराट् शक्तिमान आधार, इसी कारण आप पर उनकी दृष्टि पड़ी है । मैं और रानी, उनको 'बंधु' के नाम से ही संबोधित करते हैं । इसके अलावा, ये मनुष्य तो हैं नहीं, देवता भी नहीं हैं—केवल एक सत्ता है, दिव्यसत्ता । उस दिन चितपुर रोड पर हम दोनों बातचीत करते हुए चले आ रहे थे, सहसा देखा, एक रिक्शे का पहिया तथा उसका कुछ हिस्सा 'बंधु' के शरीर को चीरता सा चला गया-जैसे यह कोई शरीर नहीं हो,एक अशरीरी दिव्य सत्ता हो । अनेक बार देखा है तथा प्रत्यक्ष भी किया है, प्रकृति उनकी किंकरी है । जब भी जो इच्छा होती है, वही घट जाता है । इसी कारण बंधु क्या हैं और कौन हैं, कहाँ उनका स्थान है, ये सभी प्रश्न जैसे मेरे लिये अप्रासंगिक हो उठे हैं ।"

ठाकुरिया की रानी दी से प्रथम साक्षात्कार के बाद वहाँ कई दिन गया था । फिर कुछ व्यक्तिगत झंझटों के कारण वहाँ जा नहीं पाया । एक दिन कालीदा अनायास मेरे फ्लैट में उपस्थित हुए ! उलाहने के स्वर में उन्होंने कहा, "आप रानी के पास फिर गये नहीं ?"

"नहीं तो ।"

"देखिये, हमारा संपर्क साधारण सामाजिक बंधुत्व का ही नहीं है । 'बंधु' ने कहा है, यह जन्मान्तर का है । पिछले दिन 'बंधु' रानी के पास गये थे । यही नहीं, वहाँ बैठ कर वे नाना तत्वों पर विचार विमर्ष भी कर आये । उन्होंने कहा, "जब भी तुम स्मरण करोगी, मैं उपस्थित हो जाऊँगा ।" आपके विषय में भी उन्होंने रानी से सस्नेह जिज्ञासा की थी—"तुम्हारा प्रमथ दा तुमसे मिलने यहाँ आता है तो ?" रानी ने मुझसे कहा था, 'बंधु' की इस बात से मैंने समझा-हम दोनों के भीतर जन्मान्तर

तथा इस जन्म का भी आत्मिक संबन्ध है, जिसके केन्द्र 'बंधु' ही हैं। प्रमथ दा को यहाँ आने को अवश्य कहेंगे।" कल ही आप चलें। मैं भी जा रहा हूँ अनेक बातें हैं जिन पर हम तीनों बैठ कर वार्ता करेंगे।"

दूसरे दिन प्रातः ही ठाकुरिया गया। हमारे समस्त आकर्षणों के केन्द्र 'बंधु' की ही बात शुरू हुई। कालीदा ने कहा, "इस बार 'बंधु' अकेले नहीं हैं, उनके एक सहयोगी भी जुट गये हैं। परा-ज्ञान तथा योग शक्ति के शिखर पर वे भी अधोष्ठित हैं। पुर्वाश्रम में वे विलायत में शिक्षित प्रोफेसर थे। 'बंधु' का साहचर्य पाकर वे अनायास रुपान्तरित हो गये हैं। दिव्य अमृत रस की वे खान हैं—जैसे रस ब्रह्म का एक अपरुप प्रकाश हो। उनके साथ भी नित्य मेरी वातचीत चलती है। जीवन में मानो एक नूतन क्षितिज खुलता जा रहा है। देखता हूँ कि उनके सान्निध्य से एक अवि-श्वसनीय रुपान्तर मेरे जीवन में घट रहा है।

इस प्रसंग के बाद 'बंधु' और उनके सहयोगी इन ब्रह्मस्वरुप महात्मा को कभी बड़े कर्त्ता और कभी छोटे कर्त्ता तथा कभी बंधु तथा प्रोफेसर कह कर ही उल्लेख करता।

शांत बैठा सोचता हूँ—मेरे प्राण प्रिय बंधु, जो मननशीलता तथा शक्तिमत्ता में अप्रतिम हैं, आज सहसा किसी एक नये 'बंधु' द्वारा उत्सारिता होने वाले आध्यात्म तरंग में डूबे चले जा रहे हैं। कौन हैं ये 'बंधु" ? विपुल योग शक्ति तथा अध्यात्म ज्ञान के वे अधिकारी हैं। किंतु उनका प्रकृत स्वरुप क्या है ?

श्री युक्त कालीदा तथा रानी दी दोनों के पास मैंने अपने मन के (स्वगतोक्ति) संशय को प्रकट किया। उसके बाद मैंने अपनी राय जाहिर की, "मैं समझता हूँ, कालीदा, इन 'बंधु' ने किसी गूढ़ प्रयो-जन से ही आपको पकड़ा है और खेल ही खेल में उसके गंभीर तत्व में लिये चले जा रहे हैं। गुपचुप एक ईश्वरी नाटक की प्रस्तुति

चल रही है। वे 'बंधु' कोई ऋषि-योगी नहीं हैं-स्वयं ब्रह्म हैं।"

इसके बाद इसी विषय पर थोड़ी और बातचीत हुई। किंतु श्रीयुक्त कालीदा को इन तत्वों को लेकर किसी चिंता का प्रयोजन नहीं है। दुकूल प्लावी आत्मिक ज्वार जैसे उनके जीवन में आ गया है। अपना अस्तित्व तथा व्यक्तित्व दोनों ही भूल कर वे उसमें डूब चुके हैं। अक्सर अर्धवाहय अवस्था में रहते हैं। जब तक भी संभव है, रानी दी तथा मैं उनका साथ देते हैं, तथा विशेषकर मुझे प्रायः उनके साथ दिन-रात कलकत्ता का चक्कर लगाना पड़ता है।

दूसरे दिन 'बंधु' के साथ कालीदा का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने सहास्य कहा, "देखता हूँ श्रीमान प्रमथ तुम्हें पकड़ने की बात, नाटक की प्रस्तुति, अनेक बातें कह रहे हैं। जो घटना घट रही है, वह अनादि काल से ही निश्चित थी, इनमें उन्हें मगजपच्ची करने की आवश्यकता नहीं है। उससे कहो, जिस समय जो कर्त्तव्य है उसे ठीक से करता जाय। बाकी भगवान स्वयं देखेंगे। उससे यह भी कहो, प्रेसिडेन्सी जेल में अपने छोटे भाई को दो सप्ताह से देखने क्यों नहीं गया है? यह भाई उससे बहुत स्नेह करता है, किस दिन दादा के साथ 'इन्टरव्यू' होगा, उसकी व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा करता है। जहाँ निस्वार्थ स्नेह तथा प्रेम उन्मुख हो, उसे 'रेसपान्ड' न करना, शुद्ध अन्याय ही नहीं, पाप है। उसे वहाँ जाने को कहो।"

मेरा भाई शैलेन उन दिनों प्रेसिडेन्सी जेल में राजबन्दी था। इस वार्ता के बाद उससे 'इन्टरव्यू' के दिन कभी वहाँ जाने में मुझसे चूक नहीं हुई।

इसके बाद जीवन में एक नई धारणा का सूत्रपात हुआ। हर क्षेत्र में यह देखने लगा, कि मेरे बंधु काली पद गुहाराय या उनके 'बंधु' मेरे सभी कार्यों में ही नहीं, मेरी सभी चिंताओं पर भी बराबर नजर रखते थे। वरन् आवश्यकतानुसार अपनी सम्मति भी दे देते थे। समझ गया—मेरे स्वतन्त्रतावादी 'फ्री लान्स' जीवन का पटा-

क्षेप हो गया। इन दो अभिभावकों की पूर्ण स्वीकृति होने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

कुछ दिन बाद की बात। एक दिन श्री युक्त कालीदा से 'बंधु' ने कहा, "प्रमथ यहाँ दिन-रात तुम्हारे साथ घूमता रहता है और वहाँ उसकी माँ ढाका में मरणासन्न है। इस पुत्र (प्रमथ) को वे सबसे अधिक स्नेह करती हैं। इससे साक्षात् न होने के कारण, देह त्याग नहीं कर पा रहीं हैं। अहा, राजरानी जैसी माँ–पूर्वजन्म में वह राजरानी ही थी। हाँ, प्रमथ से कहो, आज ही चला जाय, जाने से पहले उससे यह भी कहो कि एक कीमती लाल पाड़ की साड़ी अवश्य लेता जाय।"

उसी दिन डाका के लिये ट्रेन से रवाना हुआ। जाते हो देखा कि डाक्टरों ने दो दिन पहले ही जवाब दे दिया है, परन्तु माँ संघर्षरत हैं। आठ-दस घंटे बाद उन्होंने देहत्याग किया, मानो वे मेरी उपस्थिति की अपेक्षा में ही इतने समय तक थीं।

'बंधु' के आदेशानुसार जो लाल किनारी वाली साड़ी ले आया था, अंत्येष्ठि के समय माँ को पहना दिया। इन कई व्यक्तिगत बातों को कहने का कुछ अर्थ है। इस पृथ्वी पर सबसे अधिक मां को ही स्नेह करता था, उनका अंतिम दर्शन जिन्होंने संभव कर दिया वे ही 'बंधु' उसी दिन से मेरे भी प्राण प्रिय प्रभु हो गये और मैं, उनके दिव्य प्रेम की डोर से बंधे, श्री युक्त कालीदा के महाजीवन के साथ सदा के लिए संबद्ध हो गया।

'बंधु' तथा कालीदा के साथ प्राणों की डोर तथा प्रेम की डोर से बंध गया हूँ। किन्तु उनका परिचय क्या है, उनका ईश्वरीय स्वरुप क्या है—ये तात्विक प्रश्न मन में बार-बार उठते हैं। ठाकुरिया में रानी दी के वास स्थान पर उस दिन इस विषय में काफी तर्क बितर्क हुआ। बंधुवर अमलेन्दु दास गुप्त भी उस दिन उपस्थित थे। वे मनन शील व्यक्ति हैं, इसलिए उनकी उपस्थिति

में बहस खूब जम गयी ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है,—अमलेन्दु बाबू कुछ दिन वाद ही राज-बन्दी होकर जेल चले गये । उन दिनों 'बंधु' तथा कालीदा के संबन्ध में सारी बातें उन्हें लम्बे पत्र लिखकर बताता था । मेरे ये सारे पत्र संदेह वश पुलिस ने जप्त कर लिया और वापस नहीं दिया । अगर ये पत्र प्राप्त होते तो उस समय की बहुत महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हो पातीं ।

उस दिन की ठाकुरिया बैठक के बाद रात में श्री युक्त कालीदा का 'बंधु' से साक्षात्कार हुआ । 'बंधु' ने मृदु हँसते हुए कहा, "राम तुमसे मिलना चाहता है ।"

"राम ? राम कौन है ?" कालीदा ने प्रश्न किया ।

"बड़ा साधु है, जिसे तुम लोग राम ठाकुर कहते हो । केवल बड़ा साधु कह देने से उसका परिचय संपूर्ण नहीं होता । तंत्र और योग की युग्म रश्मियों को सम्मिलित रुप से ग्रहण कर कर्ता रुप में इस पृथ्वी पर जिन्होंने आधार वना रखा है, राम ठाकुर उनमें से एक हैं ।"

कालीदा से उनका साक्षात् कभी नहीं हुआ है । प्रसन्नता से वे प्रस्तुत हो गये । 'बंधु' ने कहा "कल अपराह्न तीन बजे, विक्टोरिया मेमोरियल के उत्तरी मेन गेट के सामने राम तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा । उसी समय जाना ।"

इस साक्षात्कार का मनोरम वर्णन श्री युक्त कालीदा के मुख से ही जो सुना है, उसका हवाला नीचे दे रहा हूँ ।

—"तीन बजे उत्तरी गेट पर जाकर देखता हूँ, गौरकांति, दीर्घवपु उज्जवल नयन, एक व्यक्ति खड़ाऊं पहने हुए खड़े हैं। शरीर पर एक धोती है, तथा आधी बांह का एक फतुहा ( बंडी के किस्म का ) । समझ गया, यही साधुओं में बहुचर्चित राम ठाकुर हैं । स्थान उस समय जन शून्य था । जापानी बम वर्षकों के भय से शहर प्राय:

खाली हो गया था ।

आगे जाते ही उन्होंने आलिंगन में बांध लिया । उसके बाद काफी समय तक सोत्साह बातचीत होती रही । सहसा सुनने पर कौन कह सकता था कि यही महाशक्तिधर, पूर्ण ब्रह्मज्ञ साधक,राम ठाकुर हैं ? ये तो जैसे आनंद से मरे हुए तरुण व्यक्ति हैं ।

बातचीत में ही, मैंने जिज्ञासा की, अच्छा, जिनको मैं 'बंधु' कह कर पुकारता हूँ, असल में ये कौन हैं ?

राम ठाकुर के मुख तथा नेत्रों में एक दिव्य आनंद की आभा फैल गयी । उन्होंने कहा, "भाई वे वही महाशक्ति हैं,—जिनका ऋषि-मुनिगण, हमारे जैसे साधक गण युग-युग से भक्ति पूर्वक ध्यान करते हैं ।"

"तो मुझे इन्होंने इस तरह पकड़ क्यों रखा है ?"

"काली भाई, तुम्हारी जो जन्म जन्मान्तर की सुकृति है, उसी के कारण वे तुम्हारे पीछे इस तरह लगे हुए हैं ।" अब परिहास करते हुए, एक बात और कही श्री श्री राम ठाकुर ने । "भाई, ये तो सर्व घट में, सब मनुष्यों की पकड़ के बाहर ही घूमते हैं । आसानी से पकड़ में नहीं आते हैं । तुम्हारी पकड़ में जब आ गये हैं, तो इन्हें अच्छी शिक्षा तो दे दो भाई ।" कहते-कहते किशोर बालक की तरह हंसी से भर गये, ये विराट् महापुरुष ।

कालीदा को भी इस हँसी में सम्मिलित होना पड़ा । बातचीत में ही दो घंटे का समय कट गया । इसका कालीदा को होश ही नहीं रहा । सहसा कलाई घड़ी को देखते ही वे चिंतित हो उठे ।

"क्या हुआ ?" राम ठाकुर ने प्रश्न किया ।

"नीमतल्ला में पाँच बजे एक सज्जन से मिलना था । बहुत जरुरी काम था । वही देख रहा हूँ कि पाँच तो बज ही गया । उनसे अब भेंट नहीं हो पायगी ।"

दिव्य, मधुर हँसी हंसते हुये रामठाकुर ने कहा,"अरे भाई,इतनी

सो बात है ? फिर अपने नीमतल्ला जाओ ।"

श्री युक्त काली दा ने कहा था, "आश्चर्य की बात, ठीक अगले मुहूर्त में ही मैं देखता हूँ—जिनके घर मुझे जाना है, ठीक उनके घर के 'स्टाप' पर मैं ट्राम से नीचे उत्तर रहा हूँ, और रास्ते पर पैर रख रहा हूँ। समय पांच बजे दिन का है। राम भाई ने एक मुहूर्त में ही 'फिजिकली' पांच मील दूर इस गंतव्य स्थान पर मेरा चालान कर दिया है।"

दूसरे दिन बंधु से साक्षात् होने पर, उन्होंने हँसते हुए जिज्ञासा की, "राम से मिल कर तुम्हें कैसा लगा ?

सभी बातें बतलाने के बाद कालीदा ने कहा, "हिप्नाटिजम'तथा इन्द्रजाल कुछ भी नहीं था, राम भाई ने इस शक्त समर्थ देह को एक मुहूर्त में 'फिजिकली' दूर चालान कर दिया।"

'बंधु' बहुत प्रसन्न हुए तथा उन्होंने कहा, "हाँ, राम कह रहा था।—अपने काली भाई को एक धक्का दे दिया। हम दो सखाओं के बीच एक मजे की बात हो गयी।"

'बंधु' का स्वरुप क्या है, इसका कुछ ज्ञान राम ठाकुर जैसे महा-साधक के मुख से थोड़ा-थोड़ा हुआ। हम अंतरंग लोगों ने समझ लिया—कालीदा के 'बंधु' स्वयं पर-ब्रह्म हैं। रुप, अरुप, साकार-निराकार वे सभी हैं। ऐसा नहीं होने से राम ठाकुर जैसे पूर्ण ब्रह्मज्ञ उन्हें महाशक्ति' कह कर कैसे संबोधित करते ? तथा ऋषि-गण युग-युग से उनका ध्यान कैसे करते ?

कुछ दिनों के अंदर ही 'बंधु' का स्वरुप श्री युक्त कालीदा के सामने और स्पष्ट हो गया । अधिक समय तक कर्जन पार्क या गाड़िया मैदान में संध्या या रात के समय 'बंधु' या छोटे कर्ता (प्रोफेसर ) के साथ कालीदा का साक्षात्कार होता। उनके पास बैठने पर ही एक शुभ्र ज्योति आसपास फैल जाती, उस ज्योति

के प्रकाश में कालीदा, उनके द्वारा लायी हुई, अति प्राचीन शास्त्र ग्रन्थों की पाण्डुलिपि से लेकर कलकत्ता के दैनिक पत्र तक, सभी अनायास पढ़ पाते थे। उनके आसपास से मैदान भ्रमणकारी या प्रणयी युगल अक्सर निकल जाते। किंतु उस दिव्य प्रकाश या उस प्रकाश से आवेष्ठित इन दिव्य महापुरुषों को वे लोग कभी देख पाते थे, यह विस्मय का विषय था।

उस दिन 'बंधु'और कालीदा मैदान में बैठ कर नाना विषयों पर बातचीत कर रहे हैं। सहसा भारत के अध्यात्म- जीवन एवं श्रेष्ठ ब्रह्मविदों के प्रसंग पर बातचीत आ गयी। कालीदा ने अचानक प्रश्न किया, "अच्छा आदि काल से आज तक भारतवर्ष के श्रेष्ठतम ऋषि कौन-कौन हैं ?"

शांत स्वर में 'बंधु' ने कहा, जैसे पर-ब्रह्म अपनी सृष्टि के अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में विराजमान हैं, वैसे ही युग-युग से ऋषि लोग भी सर्वत्र उनके साथ रहते हैं। अच्छा, श्रेष्ठतम ऋषियों की एक झांकी मैं तुम्हें दिखाता हूँ।"

थोड़ा पास आकर 'बंधु ने कालीदा के ब्रह्मदण्ड(स्पाइनलकार्ड) के ऊपरी भाग को धीरे से स्पर्श किया। उसी क्षण, 'टेलिभिजन' के पर्दे जैसा, एक पर्दा उनकी आँखों के सामने आलोकित हो गया। दूसरे दिन कालीदा ने मुझसे कहा, "मैंने देखा, ज्योतिर्मय दस ऋषि हैं, और 'बंधु' उन सबसे उच्चतर वेदी पर समासीन हैं, जैसे वे इन ऋषियों के 'प्रिजाइडिंग डीटी' हों—आराध्य तथा परम पुरुष। ऋषियों का परिचय 'बंधु' ने स्वयं दिया, उनके बीच थे, याज्ञवल्क्य, कपिल, भृगु, वशिष्ठ, गौतम इत्यादि महान पुरुष, जो कि सूक्ष्मतर दिव्य स्तर में विराजित होकर सारी विश्व सृष्टि को धारण किये हुए हैं।"

इस अलौकिक दृश्यपट के माध्यम से 'बंधु' का जो परिचय मिलता है,उससे समस्त चिंतन धारा ही स्तब्ध हो जाती है। अवाक्

होकर सोचता हूँ, ये परम पुरुष हृदय में अपार प्रेम की धारा लिये, मेरे ही प्रियतम बंधु, कालीदा के साथ घूम रहे हैं । यह अविश्वसनीय है ।

प्रायः दो मास बाद, एक दिन कर्जन पार्क में 'बंधु' से कालीदा की नाना प्रसंगों पर वार्त्ता हो रही थी । विदा होते समय 'बंधु' ने कहा, "तुम्हें तो खिचड़ी बहुत प्रिय है । कल मेरे यहाँ आओ । शुद्ध घी तो आजकल मिलता नहीं, परन्तु मेरी एक दरिद्र ग्वालिनी भक्त है, जिसे मैं माँ कह कर पुकारता हूँ, उसने थोड़ा शुद्ध घी मेरे लिए रखा है । उसी से तुम्हारे लिये खिचड़ी बनाऊँगा । रसोई तैयार करना मैं अच्छी तरह जानता हूँ ।"

कालीदा सोत्साह राजी हो गये । घर आते समय बेहाला "ब्रिज' के पास छोटे कर्त्ता से भेंट हो गयी । 'बंधु' के प्रधान सहयोगी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ये ऋषिकल्प महात्मा, कुछ दिनों तक कालीदा के शिक्षा गुरु के रुप में सामने आये थे । प्रायः नित्य ही दोनों का मिलना होता था । ये छोटे कर्त्ता जो स्वयं रस ब्रह्म के स्वरुप थे। जब भी आते, कालीदा दिव्य आनंद तथा मुक्त हास्य से भर जाते । इसके साथ ही गूढ़ परम तत्वों की व्याख्या तथा विश्लेषण भी होता ।

"वातचीत में ही कालीदा ने कहा, 'बंधु' ने तो कल अपने यहाँ खिचड़ी खाने का निमंत्रण दे रखा है । किंतु आप लोगों का पता तो मुझे मालूम ही नहीं है । 'बंधु' के साथ साक्षात् होने पर, आनंद के ज्वार में डूब जाता हूँ । कोई काम की बात तो जानने की इच्छा ही नहीं होती । किंतु अब मेरी धारणा होती है, कि आप लोग जिस स्तर के पुरुष हैं, आप लोगो का नाम, पता, यह सब कुछ है भी या नहीं ?"

"सभी है भाई । अच्छी सुगन्धि वाले घी की खिचड़ी खाने के लिये आने पर तो सब समझ ही जाओगे । हम लोग अभी कुछ

दिनों के लिये गंगा के किनारे रेलवे के शाली मार गोदाम के पास ही हावड़ा में हैं। घर का कोई नंबर नहीं है । उसका तुम्हें कोई प्रयोजन भी नहीं है। जिन्होंने तुम्हें निमंत्रित किया है, भाई वे स्वयं अपनी ही गरज से तुमको सही घर तक पहुँचा देंगे । इसके अलावा, अगर तुम नहीं पहुंचे तो खिचड़ी भी बरबाद होगी, यह भी तो भय है ।''

दूसरे दिन ठाकुरिया में बैटकर कालीदा ने स्वयं मेरे तथा रानी दी के समक्ष उस निमंत्रण का जो वर्णन किया था, उसका सारांश इस प्रकार है :

रात्रि का समय है। शालीमार यार्ड से आगे जा रहा हूँ । गृहस्थ लोगों के घर, आसपास कहीं नहीं हैं। जो भी हो, लगता है जैसे एक अदृश्य शक्ति स्वतः दोनों पैरों को खींचती चली जा रही है। प्रायः एक मील चलने के बाद, गंगा के किनारे एक जीर्ण एक-मंजिला घर दिखलायी पड़ा। ऐसा आभास हुआ कि 'यही घर है'-और उसके अंदर घुस पड़ा ।

कमरे के सामने खड़े होकर यही देखा कि 'बंधु' एक तख्त-पोश के ऊपर प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं, और नीचे हाथ जोड़े परम श्रद्धा से भरे 'छोटे कर्त्ता' आसन पर बैठे, उनकी स्तव तथा स्तुति कर रहे हैं, तथा दोनों नेत्रों से पुलकाश्रुओं की वर्षा हो रही है ।

घर की चौकठ पकड़े, इस अपूर्व गंभीर दृश्य को निष्पलक देख रहा हूँ।

थोड़ी देर बाद इधर देखकर 'छोटे कर्त्ता' ने सहास्य कहा, ''मोक्ष के समय, साले, इतने बाधा- विघ्न इकट्ठे हो जाते हैं । निश्चिन्त होकर कोई काम करना भी संभव नहीं है।''

कालीदा हो-हो कर के हँस पड़े। प्रसन्न मधुर स्वर में 'बंधु' ने कहा, ''वहाँ खड़े क्यों हो ? आओ, भीतर आकर बैठो ।''

''अरे आओ भाई आओ'' कहते हुए 'छोटे कर्त्ता' ने भी जल्दी

उठ कर सानन्द श्री युक्त कालीदा का आलिंगन किया ।। इस दिव्य मिलन मे स्वर्गीय आनंद की धारा प्रवाहित हो उठी।

अनेक प्रसंगों पर बातचीत में काफी समय कट गया । अब श्री युक्त कालीदा ने सहास्य छोटे कर्त्ता से कहा, "आप जब 'बंधु' की हाथ जोड़कर स्तुति कर रहे थे—तथा दोनों नेत्रों से पुलकाश्रु उमड़ पड़ रहे थे, यह दृश्य मैं कभी भूल नहीं पाऊँगा।"

"वह हमारा निजी मामला है । काली भाई, असल में 'बंधु' हैं कौन ? ये कुछ भी नहीं हैं, ये सब के भीतर व्याप्त हैं, परन्तु स्वयं निर्लिप्त हैं। अस्तित्व तथा अनस्तित्व से बाहर । ये निराकार, अरुप तथा निष्कल हैं । ये स्वतः निष्क्रिय हैं । ये कुछ भी नहीं करते ।"

उसके बाद कालीदा की ओर तेजोद्दीप्त दृष्टि से देखकर, अपने कक्ष की ओर इंगित कर उन्होंने कहा, "विश्व सृष्टि में जो कुछ करने योग्य है, वह मैं करता हूँ। मैं ही कर्त्ता हूँ, मैं ही सब चलाता हूँ, मैं ही इस अनन्त ब्रह्माण्ड सृष्टि का सृजन तथा नाश करता हूँ।"

'बंधु' की ओर देख कर, आज्ञा देने जैसी मुद्रा बनाकर उन्होंने कहा, "मैं यदि कहता हूँ कि ये नहीं हैं, तो सचमुच ये नहीं हैं । उधर देखो ।"

कालीदा ने सविस्मय उस ओर देखा । सत्य ही, 'बंधु' की रक्त माँस की जीवन्त परम मनोरम मूर्त्ति उसी क्षण तख्तपोश से अंतर्धान हो गयी है।

दूसरे ही क्षण हुंकार करके ऊँगली दिखाते हुए छोटे कर्त्ता ने कहा, "अब मैं कहता हूँ—वे हैं। यह देखो भाई, वे सचमुच हैं।"

सत्य ही उसी क्षण 'बंधु' की मूर्त्ति वहाँ बैठी हुई दिखलायी पड़ गयी । मृदु मुसकान के साथ बैठे हुए हैं, तथा दोनों नेत्रों से दिव्य आनंद की ज्योति प्रवाहित हो रही है ।

उसी क्षण छोटे कर्त्ता के इस आनंद लीला के माध्यम से श्री

युक्त कालीदा को—अरुप ब्रह्म तथा रुप ब्रह्म, निराकार निष्क्रिय ब्रह्म तथा ईश्वर या हिरण्यगर्भ इन दोनों के परिचय की उपलब्धि तथा स्फुरण हो गया।

दो दिन बाद ठाकुरिया में रानी दी के साथ मेरी तथा कालीदा की भेंट हुई। 'बंधु' के निमंत्रण की सारी बातें तथा वहाँ की बात-चीत के बारे में जानने के लिए रानी दी तथा मैं व्यग्र थे। कालीदा ने भी सारी बातें विस्तार पूर्वक बतायी।

रानी दी की ओर देखकर विनोद पूर्वक मैं वे कहा, "दीदी, अब तो आप समझ गयीं कि मेरे प्राण प्रिय कालीदा किसके खप्पर में पड़ गये हैं। उनके एक पर-ब्रह्म हैं—तथा एक कार्य ब्रह्म या ईश्वर हैं। नहीं : यह सोचकर भी दिमाग खराब हो जाता है।"

कालीदा के मुख से सारी बातें सुन कर रानी दी बालिका जैसी, आनंद से मत्त हो गयीं। जल्दी-जल्दी कालीदा से सारी बातें बार-बार कहलवा गयीं।

फिर मैंने सहास्य प्रश्न किया, "यह सब तो मैंने सुना, परन्तु विश्वस्रष्टा की खिचड़ी कैसी हुई थी, यह तो आपने बताया ही नहीं।"

"निश्चय ही अपूर्व थी।" रानी दी ने कहा। इस खिचड़ी में शुद्ध घी, सुन्दर महीन चावल था, और स्वयं 'बंधु' ने उसे पकाया था। खराब कैसे होगी?" कालीदा भी इस बात को सुन कर हँसने लगे।

बाद में मैंने कालीदा से कहा था, "अच्छा, बड़े कर्त्ता और छोटे कर्त्ता के हावड़ा, शालीमार वाले घर पर तो आप हो ही आये हैं, और उसे पहचान भी सकते हैं। एक दिन चलिये हम दोनों वहाँ चलें और उस परम पवित्र स्थान को देख आवें।"

"आप क्या पागल हो गये हैं?" कालीदा ने कहा। "अरे महाशय, उसके बाद कई दिनों तक उस घर को खोज निकालने की चेष्टा

की। रात में भी गया तथा दिन में भी, किंतु उसका पता नहीं पा सका। असल में उसका अस्तित्व भी था, या नहीं इसमें मुझे संदेह है।"

मैंने कहा, "यह तो घर नहीं हुआ, जैसे माया मंदिर हो, परन्तु असली घी की सुस्वादु खिचड़ी पेट भर खाकर आपने डकार ली होगी, इसे तो माया कह कर उड़ाया नहीं जा सकता।"

अंतराल से जो सब कार्यों की परिचालना करते हैं, उनका परिचय तथा स्वरुप कुछ तो समझ में आया। परन्तु जिसको केन्द्र करके इतनी लीला हो रही है, उन कालीदा का स्वरुप क्या है, तत्व क्या है, वह तो अभी भी अज्ञात है। यह भी हम लोगों के सौभाग्य से धीरे-धीरे बोधगम्य होता जा रहा है।

इन दिनों श्री युक्त कालीदा ने एक छोटा मकान, बेहाला के विशालाक्षीतला में किराये पर लिया है विधवा जननी की वे एक-मात्र संतान हैं, इसी कारण पुत्र की यह नयी गृहस्थी देखकर वे बड़ी संतुष्ट हैं। कालीदा की स्त्री, हमारी भाभी के भी आनंद की सीमा नहीं है। दोनों पुत्र दुलू तथा स्वदेश, उस समय स्कूल में छोटे क्लास में पढ़ते थे, तथा कन्या, माया की अवस्था प्रायः डेढ़ वर्ष होगी।

कालीदा की माता जैसी पुण्यवती एवं प्रभावशाली महिला मैंने आज तक नहीं देखी है। स्वामी भरत चन्द्र गुहाराय का देहान्त मध्य आयु में ही हो गया था। उस समय से पुत्र तथा कन्याओं का सारा दायित्व उनको ही वहन करना पड़ा। एक मात्र पुत्र कालीपद कब बड़े होकर तथा उपार्जनशील होकर, सांसारिक बनेंगे, इसी की प्रतीक्षा में वे बराबर थीं। पुत्र असाधारण प्रतिभावान थे, युनिभरसीटी की डिग्री प्राप्त कर चुके थे, किंतु विप्लवी राजनीति में सक्रिय रुप से प्रविष्ठ होकर जेल बंदी हुए तथा अपने प्रतिभासंपन्न 'कैरियर' को नष्ट कर चुके थे। विधवा जननी को इसी कारण अबतक बहुत कष्ट सहना पड़ा था। अब शांतिमय परिवेश में

गृहस्थी प्रारंभ हो जाने पर उनके जीवन की अंधकारमय झंझा में मानो एक बिजली की रेखा कौंध गयी।

माँ जैसी रुप व गुणवती महिला कदाचित् ही दिखलाई पड़ेगी। अनेकों ने देखा है कि अंतिम समय में श्री युक्त कालीदा के असंख्य भक्तों की वे सम्मिलित जननी स्वरुपा थीं। सभी यही समझते थे कि "माँ मुझी को अधिक स्नेह तथा ममता दे रही है।" अति बृद्धा-वस्था में भी उनका चंपा केला जैसा रंग, उज्वल नयन व खड़ी नाक का ध्यान आने पर चित्रित लक्ष्मी मूर्त्ति का ही भान होता है।

उन दिनों, कालीदा के चारों ओर अधिक भक्त नहीं जुटे थे, इसी कारण स्नेहमयी माँ के हृदय में मैंने एक विशिष्ठ स्थान पा लिया था। इसके अलावा उनकी यह धारणा थी कि उनके खाम-खयाली पुत्र को प्रमथ एक सच्चे मित्र के रुप में मिल गया है, अब वह (दादा) काम-काज ठीक से अवश्य करेगा। किंतु, उनके पुत्र ने ही मुझे पूर्ण रुप से कवलस्थ कर लिया है, इस बात से वे सर्वथा अनभिज्ञ थीं।

माँ के संवन्ध में कोई वात उठने पर, 'बंधु' और छोटे कर्त्ता मुखर हो उठते थे। कालीदा से कहते थे, "तुम्हारी जैसी माँ, विरली ही होती है, भाई! तीन युगों में ऐसी माँ किसी के भाग्य में अव-तीर्ण नहीं हुई।"

श्री युक्त कालीदा की स्त्री, मेरी भाभी, बाद में काफी दिनों तक अस्वस्थ रहीं थीं। उन दिनों जिन लोगों ने उन्हें देखा है, उनको उनकेपूर्व जीवन कीबुद्धि की प्रखरता व कर्मदक्षता के विषयमें कोई सही धारणा नहीं बन सकेगी। इसी कारण उनसे संबन्धित दो चार बातें यहाँ कहना आवश्यक है। ऐसा न करने से भविष्य में हम उनका मूल्यांकन तथा मर्यादा का निरुपण नहीं कर पाँयगे।

'बंधु' और छोटे कर्त्ता बराबर ही उनके विषय में कहते,— वे अतुलनीय सती साध्वी थीं। 'कंपास' की सूई की तरह

उनकी सारी सत्ता, स्वामी की ओर ही केन्द्रीभूत थी। किंतु नियति का विधान; उनके स्वामी, उनके केन्द्र बिंदु मनुष्य की परिधि से बाहर चले गये थे, और विश्व की माया को भी भूल चुके थे।

कालीदा, कलकत्ता प्रायः ही आते और तमाम घूमते फिरते। किसी-किसी दिन मेरे 'फ्लैट' में भी आते और वहीं रात को ठहर भी जाते। ऐसे में मुझे प्रायः उनके साथ बराबर ही रहना पड़ता। यों भी वे 'डायनमिक पुरुष' से, ऊपर से आध्यात्मिक रूपान्तर के एक विराट् ज्वार से भी वे उन दिनों उन्मत्त जैसे थे।

कभी-कभी मैं उनके बेहाला स्थित घर पर जाकर 'वीक एन्ड' काट आता था। मेरे जाने पर सारे परिवार में आनंद की लहर छा जाती। जाते ही, भाभी प्रफुल्ल होकर माँस मंगा कर पकाने बैठ जाती। उन दिनों उनकी पाकनिपुणता अतुलनीय थी।

एक दिन माँ के साथ श्री युक्त कालीदा एक आत्मीय के घर उनसे मिलने गये थे। बच्चे कहीं बाहर खेलने में मस्त थे तथा भाभी रसोई के कार्य में व्यस्त थीं। इसी समय एक अपरिचित, बलिष्ठ एवं तेजस्वी युवक दीवार फांद कर आँगन में टपक पड़े।

"आप कौन हैं, इस तरह शरीफों के घर में क्यों घुस रहे हैं ?" क्रुद्ध होकर भाभी ने प्रश्न किया।

आगन्तुक ने उत्तर दिया, "चुपचाप, पहले मेरी बात सुन लें। मैं विप्लवी दल का कार्यकर्त्ता हूँ, तथा साथ के इस पुलिन्दे में रिभाल्वर है। यह जान कर ही पुलिस मेरा पीछा कर रही है। इसी कारण इस तरह अंदर आना पड़ा। दया करके, थोड़ी देर के लिये मुझे आश्रय देने का कष्ट करें। उसके बाद मैं स्वयं चला जाऊँगा।"

एक क्षण में ही भाभी ने इस विषय में विचार स्थिर कर लिये। उनके स्वामी भी तो एक विप्लवी ही हैं! फिर इन सज्जन की इस विपत्ति से रक्षा क्यों नहीं करेंगी।

उन्होंने कहा, "आप बगल वाले कमरे में जाकर जल्दी अपने सारे कपड़े उतार डालिये। 'रैक' के ऊपर मेरे पति की एक लुंगी है, उसे पहन कर, नंगे बदन चौके में चले आइये। कढ़ाई में दाल चढ़ी है, उसे कलछी से चलाते रहिये। पुलिस वाले, आने पर यही समझेंगे कि परिवार के लोग ही भोजन बनाने में व्यस्त हैं।"

आगन्तुक ने यही किया। कुछ मिनटों के अंदर ही एक पुलिस अफसर, कुछ पुलिस वालों के साथ, घर में उपस्थित हुए। भाभी को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "एक डकैत को पकड़ने के लिये सभी परेशान हो रहे हैं। इस घर में क्या किसी अपरिचित आदमी को आपने घुसते देखा है ?

"नहीं—अभी तो कोइ नहीं आया है, कहते हुए, भाभी अपने" गृहस्थी के कार्य में लग गयीं।

सोने वाला कमरा, आँगन, सभी जगह घूम फिर कर उन लोगों ने देखा। चौके में भी उचक कर देखा—नंगे बदन, लुंगी पहने हुए एक सज्जन भोजन बना रहे हैं। उन्हें भान हुआ कि ये घर के मालिक हैं और स्वयं चौके का कार्य कर रहे हैं। उनसे भी उन्होंने प्रश्न किया, "महाशय, इस घर में थोड़ी देर पहले गुण्डा जैसा कोई आदमी घुसा है क्या ?"

"प्रत्युत्तर में सुना गया, नहीं महाशय, इधर तो कोई नहीं आया।"

पुलिस अफसर, सदल-बल, बाहर चले गये। आस-पास के भी दो चार घरों में पूछताछ करके वे थाने वापस चले गये।

दो घंटे बाद कालीदा, घर वापस लौटे। आँगन में उतरते ही देखा कि चौके में एक आदमी छोलनी लिये हुए, विविध कार्य कर रहा है। आगे जाते ही गद्‌गद् स्वर में बोल उठे, "अरे भाई विजय—तू यहाँ कब आया ? मेरी लुंगी पहन कर चौके में व्यस्त हो रहे हो। मामला क्या है ?"

विजय दत्त और काली दा बाल्य काल से ही, एक ही विप्लवी के अभिन्न हृदय बंधु हैं। विजय दल ने हँस कर उत्तर दिया,"यह तेरा घर है, और यह महिला तुम्हारी स्त्री हैं, यह मैं कैसे जानता? तुम्हारे विवाह के उपरान्त दुबारा तो इन्हें मैंने देखा नहीं !"

उसके बाद उस दिन की नाटकीय घटना की बात हुई। उन्होंने कहा, तुम्हारी स्त्री इस तरह चटपट व्यवस्था नहीं कर देती तो आज निश्चय ही इस ववाल में पकड़ा जाता और 'श्री घर' वास होता।

यह सुनते ही दोनों मित्र अट्टहास कर उठे। उसके बाद खाना पीना और गपशप शुरु हुई।

कालीदा के माध्यम से हो, पुराने विप्लवी नेता विजय दत्त मेरे भी घनिष्ट मित्र हैं और उनसे अभो भी प्रायः मुलाकात हो जाती है। उनसे ही मैंने उपरोक्त घटना का वर्णन सुना है।

विशालाक्षीतला में विशालाक्षी देवी की शुभ दृष्टि, अधिक दिनों तक कालीदा की इस छोटी सी गृहस्थी पर नहीं रह सकी। घटना क्रम के अनुसार उन्हें इस क्षेत्र का त्याग करना पड़ा।

उस दिन प्रातः ही कालीदा के विशालक्षीतला वाले मकान पर उपस्थित हुआ। पहुँचते ही उन्होंने व्यग्र होकर मुझे अपने कमरे में बुला लिया। " यहाँ का निवास अब शेष हो गया। कल रात को ही मिलिटरी वाले इस क्षेत्र वालों को नोटिस दे गये हैं। युद्ध के 'इमरजेन्सी' कानून के अंतर्गत, इस सारे इलाके पर वे लोग अधिकार करेंगे। चौवीस घंटे के अंदर यानी आज रात में ही सव लोगों को अन्यत्र चले जाना होगा। ऐसा लगता है वे लोग यहाँ मिलिटरी सामानों का 'स्टाक' करेंगे।"

मैंने चिंतित होकर कहा;"फिर आपने क्या तय किया ?"

तय क्या किया है, दोपहर के बाद ही यह मकान छोड़ दूँगा। घर के सभी लोग रंगपुर चले जॉयगे। एक अवसर भी मिलगयाहै।

रंगपुर में मेरा एक प्रिय पात्र लड़का है, सुधीन । वहाँ उसने डाक्टरी शुरू किया है । सुधीन किसी कार्य से कलकत्ता आया था, उससे कहा था, "युद्ध की डांवाडोल स्थिति चल रही है, कब क्या हो जायगा, कुछ पता नहीं । कलकत्ते की स्थिति कैसी रहेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता । तुम क्या मेरे लिये एक किराये का मकान रंगपुर में खोज सकोगे ? यहाँ से सभी लोगों को वहाँ भेज दूँगा ।" उसने कहा, "मेरे घर के पास ही एक मकान खाली है । किराया भी बहुत कम है । अगर ये लोग जाँयगे, तो मैं यथा साध्य देख भाल भी कर सकूँगा—आप निश्चित रहें ।" वहाँ की व्यवस्था तो हो गयी है,किंतु आज अभी काफी रुपये की आवश्यकता है । आपके पास क्या रुपये हैं ? चार सौ दे सकेंगे ?"

मैंने उत्तर दिया, "आज अभी कैसे दे सकूँगा ? एक-दो दिन बाद की बात होती तो प्रबन्ध हो सकता था ।"

"नहीं, नहीं, आज ही सबको भेज देना है ।"

"घर खाली करने के कारण इतनी विपत्ति में क्यों पड़ गये हैं ? मेरा अपना 'फ्लैट' तो प्रायः खाली ही है । मैं एक नौकर के साथ ही रहता हूँ । वहाँ तो सभी जाकर रह सकते हैं ।"

"आप नया बखेड़ा मत खड़ा कीजिये । कुछ अन्य कारण भी हैं, जिससे सभी का रंगपुर जाना आवश्यक है । देखते ही हैं, मेरी उन्माद जैसी अवस्था है । गृहस्थी के संबन्ध में कुछ भी ध्यान नहीं दे पा रहा हूँ । इन लोगों को आज ही रवाना कर दूँगा । किंतु यहाँ सबके पैसे चुकता कर, रेल भाड़ा,तथा वहाँ का खर्च-सब मिला चार सौ रुपये से कम में काम नही चलेगा ।"

"उसका क्या प्रबंध होगा ?" मैंने प्रश्न किया ।

"कोई व्यवस्था नहीं है । फिर भी मैंने अपनी ओर से निश्चय कर लिया है । 'बंधु' ने कहा है, "तुम कोई भी संकल्प कर लोगे तो पृथ्वी उलट जाने पर भी वह सफल होगा । ऐसी कोई शक्ति

नहीं जो उसमें बाधा दे सके।"

कई सिगरेट फूँकने के बाद उन्होंने कहा, "किन्तु आप शाम को स्टेशन अवश्य आवेंगे। माँ और दुलू की माँ, आप को देख लेने पर मेरी देख भाल के संबन्ध में कुछ आश्वस्त हो जाँयगी।"

"निश्चय ही आऊँगा। किंतु, आप सबको लेकर स्टेशन जा पायगें, या नहीं, इसमें मुझे संदेह हो रहा है। कुछ घंटों के अंदर इन चार सौ रुपयों की व्यवस्था किस तरह होगी? यहाँ आप तो लेटे हुए परमानन्द पूर्वक सिगरेट खींचते चले जा रहे हैं।"

"सचमुच, यह नहीं जानता कि रुपया कहाँ से आवेगा फिर भी इनको रंगपुर भेजूँगा, यह तय करने के बाद, रुपयों के विषय में कोई उद्वेग तथा चिंता नहीं है।"

शाम से पहले ही सियालदह स्टेशन गया, भीतर काफी दुश्चिंता थी। परन्तु पहुँचते ही देखा कि कालीदा, व्यवस्था में काफी व्यस्त हैं। अपने पाकेट से उन्होंने टिकट कटाने के लिये रुपया निकाला। मैंने देखा उनके पास अभी एक गड्डी नोट और शेष हैं।

"हँस कर धीरे स्वर में मैंने उनसे कहा, 'मिरेकिल' किस तरह हो गया?"

उन्होंने प्रत्युत्तर दिया, "यह एक अद्भुत कहानी है। निरा गप्प जैसी लगेगी। गाड़ी चली जाय, फिर आपको सारी बातें बताऊँगा।"

सभी को बिदा करके हम दोनों, मेन स्टेशन के दूसरी ओर रेस्ट रुम वाले रेस्ट्राँ में जाकर बैठे। कालीदा ने बात प्रारंभ की :

आप के चले जाने के थोड़ी देर बाद ही, हाफ पैन्ट पहने एक नौ-दस वर्ष का लड़का दौड़ कर मेरे सामने उपस्थित हुआ। मेरे घर से लगा हुआ उत्तर तरफ एक तालाब है, यह तो आपने देखा ही है।"

"हाँ, मैं तो आपके यहाँ जाने पर अक्सर उसीमें स्नान करता था तथा तैरता भी था। वह तो पालों का तालाब है।"

"हाँ, मैं भी रोज उसमें जाता था। इस तालाब से पूर्व की ओर पाल लोगों का घर है । लड़का उसी घर का था। घर में अकेला बैठा हुआ हुआ लगातार सिगरेट के कश खींच रहा था। बच्चे ने घुसते ही कहा, "मामा बाबू, मेरी माँ ने मुझे आप के पास भेजा है।"

"क्यो रे ?"

"आपको क्या रुपयों की आवश्यकता है ?"

"बहुत आवश्यकता है, परन्तु इनमें तुम्हारी माँ क्या कर सकेगी ?"

"माँ ने कहा है कि आपको जो आवश्यकता होगी वह दे देगी।"

"उनसे कहो,अभी मुझे चार सौ रुपयों की आवश्यकता होगी।" दस-पन्द्रह मिनट के बाद कागज का एक पैकेट लिये बालक पुनः उपस्थित हुआ। उसमें चार सौ रुपये ही थे।

जो भी हो, कालीदा निश्चिंत हो गये। अब उन्होंने बच्चे से प्रश्न किया, "अरे, तुम्हारी माँ को किस तरह मालूम हुआ कि मुझे रुपये चाहिए । मुझे तो वे पहचानती भी नहीं हैं। इन रुपयों को उन्होने सहसा दिया कैसे ?"

"माँ ने कहा है, कि आप एक बड़े साधु हैं।"

"इस बात को उन्होंने किस तरह जाना ?"

"माँ अपनी बाल्यावस्था से ही बाग बाजार स्थित देवता, मदन मोहन की भक्त हैं। मेरे पिता के देहान्त के बाद से वे बराबर पूजा अर्चना में लगी रहती हैं। प्रति मास, एक बार वे मदन मोहन के दर्शन को जाती हैं। कल रात, सहसा निद्रा भंग होने पर उन्होंने देखा—घर में प्रकाश फैला हुआ है, और मदन मोहन आपके कंधे पर हाथ रखे हुए खड़े हैं, जैसे दो अंतरंग सखा हों। इसके बाद यह मूर्त्ति अंतर्धान हो गयी। बाद में मदन मोहन ने माँ को आदेश दिया, "मेरे इस बंधु को जितने रुपयों की आवश्यकता हो, कल प्रातः

दे देना। तुम्हारा कल्याण होगा।"

"तुम्हारी माँ तो कभी घर से बाहर भी नहीं निकलती। अंदर महल से मुझे देखा कहाँ ? मैं ही मदन-मोहन का आदमी हूँ, यह जाना किस तरह ?"

"वाह्‌रे, माँ ने कहा है कि आप रोज जब हमारे तालाब में स्नान करते हैं, तो दुमंजिले की खिड़की से मां आपको देखती है। सबको ही कहती है कि ये सज्जन, बड़े साधु पुरुष हैं। संभव है, आप रुपया न लेना चाहें, इसी कारण मां ये सारी बातें आपसे कह देने को कहीं हैं।"

श्री युक्त कालीदा के मुख से ही यह विस्त्रित कहानी सुनकर मैंने आश्चर्यपूर्वक निश्वास छोड़ा। कई दिन बाद ठाकुरिया में रानी दी के साथ भेंट हुई। उन्हें सारी बातें बता कर मैंने कहा, "देखिये दीदी मदन मोहन के जो अंतरंग मित्र हैं, वे हमारे भी मित्र हैं-यह कम सौभाग्य की बात नहीं है।"

प्रसन्न मधुर हास्य से उनके नेत्र तथा मुख उत्फुल्ल हो उठे।

पाल गृहिणी के रुपये कुछ महीनों के अंदर ही वापस करना पड़ा था। श्री युक्त कालीदा, उन दिनों 'नवयुग' पत्रिका के सह सम्पादक थे, तथा काजी नजरुल के प्रधान सहकर्मी थे। इन्हीं दिनों एक दिन 'बंधु' ने कहा, "तुम पत्रकारिता में मस्त हो और वहाँ पाल गृहिणी का मान तथा सम्मान खतरे में है। भसुर (पति के बड़े भाई) के रुपये का एक बहुत बड़ा अंश उनके पास पड़ा रहता है। उसी में से तुम्हें उधार दिया था। भसुर यह रुपया कल वापस लेगा। तहबील में गड़बड़ी होने से विधवा महिला बहुत परेशानी में नहीं पड़ेगी ?"

दूसरे दिन 'नवयुग' आफिस से चार सौ रुपये लेकर संध्या के समय कालीदा बेहाला की तरफ रवाना हुए। बेहाला के ट्राम पर चढ़ते समय, यह स्मरण हो आया कि पाल परिवार, विशालाक्षीतला

में तो नहीं है। मिलिटरी नोटिस पाने के बाद वेहाला के दक्षिणी क्षेत्र में पता नहीं कहाँ चला गया है। फिर इन महिला के पास ये रुपये किस तरह पहुँचा पाऊँगा ?

ट्राम में बैठे यही सोच रहे हैं और सिगरेट के कश खींच रहे हैं। वेहाला पुलिस थाना से थोड़ा और दक्षिण की ओर जाने पर रास्ते में हाफ पैन्ट पहने एक बालक उच्च स्वर में चीखने लगा, "मामा जी, मामाजी, इसी स्टाप पर उतर जाइये।"

हड़बड़ा कर उसी समय कालीदा उतर पड़े। बालक से स्नेह पूर्वक पूछा, "तुम सब कैसे हो रे।"

"जी, खूब अच्छी तरह हैं।"

"मैं तुम लोगों का नया मकान तो पहचानता नहीं। सोच रहा था, कैसे जा पाऊँगा ? किंतु तुमने किस तरह जाना कि मैं इसी समय, इसी ट्राम से आ रहा हूँ।"

"वाह ठाकुर मदन-मोहन ने कल रात ही माँ से कह दिया था —"मेरा बंधु तुम्हारे रुपये वापस करने आ रहा है। कल संध्या के बाद अपने पुत्र को ट्राम स्टाप के पास प्रतीक्षा करने को कहना।" इसी से तो मैं इतनी देर से यहाँ खड़ा हूँ। मां ने और भी कहा है कि हम लोगों के नये मकान पर आपके जाने से सारी बातें, सभी को ज्ञात हो जायगी। रुपये मुझे ही दे देने से काम चल जायगा।"

बच्चे के हाथ में ही रुपयों का लिफाफा देकर, वापसी ट्राम से कालीदा चले आये।

इस घटना के माध्यम से कालीदा का स्वरुप व माहात्म्य हमारे सामने प्रकट हुआ। मदन-मोहन या स्वयं ब्रह्म के सखा के रुप में वे अधीष्ठित हैं, यह ज्ञान हुआ। एवं इस विशेष शक्तिधर सखा के माध्यम से वे कोई विशेष ईश्वरीय कार्य उद्यापित करना चाहते

हैं,—इसी कारण ऋषि कल्प महात्माओं को साथ लेकर एक विराट् भूमिका तैयार हो रही है ।

१६४१ साल के बाद से 'बंधु' के प्रधान सहयोगी तथा ऋषि कल्प महात्मा–जिनको श्री युक्त कालीदा प्रोफेसर कहकर संबोधित करते, और हम छोटे कर्त्ता कहते-ने ही कालीदा के आध्यात्मिक रुपान्तर में मुख्य स्थान ग्रहण किया ।

इससे पूर्व 'बंधु' ने स्वयं कालीदा को आत्म स्वरुप के वोध का प्रयास किया था । उनसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होने के साथ-साथ ही उन्होंने कालीदा के जीवन काल के एक-एक पंखुड़ियों का उन्मीलन प्रारम्भ कर दिया था । त्याग और तितिक्षा की भित्ति पर, प्राचीन युग से महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने उन्नत शिष्यों को ब्रह्मविद्यादान की एक अभिनव तपस्या आविष्कृत की थी । इस ब्रह्म स्वरुप गुरु के मुख से विशिष्ट तपस्वीगण ब्रह्मज्ञान मूलक कथाओं का श्रवण करते, जिससे सूक्ष्म आत्मिक जगत् के पर्दे, एक-एक करके उठते जाते । आश्रम युग में इस ब्रह्मज्ञान कहानी की पद्धति को कहते 'सत्य साक्षात्'।

इन सब आत्मिक तत्व और कहानी को सुनने पर प्रायः ही कालीदा कह उठते—"यह सब तो मेरा जाना हुआ है । यह तो मेरी ही बात है ! आपको कहाँ से ज्ञात हुई ?"

कभी-कभी, इस कथा प्रसंग को विस्तृत करते हुए कहते, "इसके अलावा, इस स्थान पर मैंने अनेक अन्य गूढ़ तत्वों का भी तो वर्णन किया था ।"

'बंधु' या छोटे कर्त्ता, जो भी उस समय उपस्थित रहते, वे उसी क्षण कालीदा का ब्रह्म दण्ड स्पर्श करके कहते—"हाँ, ठीक ही तो कहते हो । ये गूढ़ तत्व की बातें तुम्हारी ही बातें तो हैं ।"

इस प्रकार प्रतिदिन पूर्व स्मृति का उज्जीवन चलता, साथ-साथ ही चलती, परम परिणति की भूमिका ।

इसके बाद उपस्थित हुआ श्री युक्त कालीदा के दीक्षा ग्रहण का पर्व। इस संबन्ध में उनके श्री मुख से ही जो मैंने सुना है, उससे यही ज्ञात होता है, कि यह पर्व गुरुत्व, तात्पर्य और वैचित्र्य की दृष्टि से अभूतपूर्व था। इससे संबन्धित तथ्यों के उद्घाटन का समय तथा स्थान यह नहीं है। इसी कारण इस प्रसंग पर अभी मैं मौन का ही अवलम्बन करूँगा।

इसके बाद कई वर्ष का समय बीत गया। 'बंधु' एवं छोटे कर्त्ता के उज्जीवन कारी सान्निध्य में ब्रह्मविद साधक के रुप में श्री युक्त कालीदा शक्ति, ज्ञान और प्रेम के उत्तुंग शिखर पर अधीष्ठित हो गये हैं।

उनके इन वर्षों के आत्मिक तथा वाह्य जीवन का वर्णन करने पर काफी विस्तार हो जायगा। साथ हो, उनका यह स्थान भीनहीं है।

'बंधु' एवं छोटे कर्त्ता के विभिन्न समय पर किये गये बातचीत तथा आचरण को देखकर हम अंतरंग लोगों को यही प्रतीति होती है,कि वे लोग उन्हें अनन्त काल से ऋषि श्रेष्ठ महर्षि याज्ञवल्क्य का अवतार ही मानते थे। वे कहते, "महर्षि याज्ञवल्क्य,मनुष्य लोक,देव लोक एवं ऋषि लोक में पर- ब्रह्म के प्रतीक थे। ऋषि गण उन्हें मर्त्यलोक में ब्रह्म ही मानते तथा उन्हें जीवन्त पर-ब्रह्म की संज्ञा देते। उच्च कोटि के ऋषि गण प्रत्येक वर्ष,इन पूर्ण ब्रह्मावतार महर्षि के दर्शन हेतु उनके आश्रम में एक बार आते।

'बंधु और छोटे कर्त्ता और भी कहते,—"सृष्टि क्रम के अनु–सार इस कलियुग में कुछ महाशक्तिधर साधक अवतीर्ण हुए हैं, जो ईश्वर की सृष्टि को ही रुपान्तरित करना चाहते हैं और अपनी कल्पना से गढ़ना चाहते हैं। ये ईश्वर विमुख महाशक्तिमान साधक हैं-इनके दमन के हेतु, इनके शक्ति कर्षण हेतु, पूर्ण ब्रह्मावतार की आवश्यकता आ पड़ी है।

वे आगे कहते, "पाप पूर्ण कलियुग के स्थान पर एक निष्पाप

कलियुग का उद्भव होगा—इस युग संधिकाल में तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ-तम ऋषिशक्ति का आविर्भाव होगा, यह युग-युग से निर्धारित था। पूर्ण ब्रह्मज्ञ एवं ब्रह्मावतार के सहयोगी महासाधकों के अलावा कोई भी आसानी से तुम्हें पहचान नहीं पायगा।"

गड़िया मैदान के पास बैठे, उस दिन छोटे कर्त्ता तथा श्री युक्त कालीदा के बीच नाना प्रसंगों पर वार्ता चल रही थी, तथा हास-परिहास भी चल रहा था। सहसा छोटे कर्त्ता ने गंभीर होकर प्रश्न किया, "अच्छा तुम एक सरल प्रश्न का उतर तो दो ?"

"पहले सुनूँ तो प्रश्न क्या है ?"

"महर्षि याज्ञवल्क्य को योगीश्वर क्यों कहते हैं ? हिन्दुओं की पूजा-अर्चा में तुमने निश्चय ही पंडितों को बोलते हुए सुना होगा—योगीश्वरम् याज्ञवल्क्यम इत्यादि ?"

"श्रेष्ठ योगी,इसी संदर्भ में उन्हें ऐसाकहाजाता है।"अन्यमनस्क भाव से सिगरेट के कश खींचते हुए उन्होंने कहा।

"ऐसा होने पर तो उन्हें योगेश्वर याज्ञवल्क्य कहा जाता ? क्यों ?"

"यही तो।"

"सुनो, ऐसा होने पर महर्षि याज्ञवल्क्य को ब्रह्मविद योगियों के ईश्वर एवं परम पुरुष कह कर पुकारा जाता। यहाँ योगियों के आराध्य, यही उनका असली अर्थ है !"

मैंने देखा है, कि समकालीन महात्मागण— उन्हें पहचाने या न पहचाने, अनजाने होने पर भी श्री युक्त कालीदा को सहज भाव से स्वीकृति तथा मर्यादा दे गये हैं।

१९४३ साल की घटना। डलहौसी स्क्वायर में किसी से मिलने का कार्य था। वह समाप्त करके, मैं तथा श्री युक्त कालीदा कलकत्ता के दक्षिणी अंचल में घूम रहे थे। सेक्रेटेरियट तथागिरजे के बीच वाले रास्ते से हम लोग गुजर रहे थे। इसी समय पीछे

एक युवक जोर से पुकार उठा–"कालीदा, ओ कालीदा, जरा ठहरिये तो !"

पास आकर युवक ने कालीदा के पैर छूकर प्रणाम किया, "कितने दिन बाद आपसे भेंट हो सकी !"

श्री युक्त कालीदा ने कालीदा ने हँसते हुए कहा, "इतने दिनों तक कहाँ गायब थे ? और आज इतनी भक्ति तथा श्रद्धा क्यों दिखला रहे हो। मामला क्या है ?"

"आपसे साक्षात्कार नहीं होता, परन्तु मैं समाचार लेता रहता हूँ। आपके घर का पता भी मैं जानता हूँ। फिर भी अनेक झमेलों के कारण जाना संभव नहीं हो सका है। सुना है, आप एक सिद्ध योगी हो गये हैं !"

"केवल सिद्ध योगी मात्र क्यों रे ? सिद्ध योगी तैयार भी कर देता हूँ। इसका एक कारखाना खोल कर किसी दिन बैठ जाउंगा" अपनी गंभीर मुद्रा में और कई बातें करके कालीदा अट्टहास कर उठे।

मेरे साथ परिचय करवा दिया, "ये है मेरा एक पुराना बंधु। विलक्षण लड़का है। नाम है निताई घोषाल।"

लड़के की ओर देख कर कहा, "तुम्हारा व्यवसाय इस समय कैसा चल रहा है ? युद्ध सामग्री बेचकर इस समय तक काफी कमा लिया होगा।"

"कालीदा, विश्वास करें, व्यवसाय में सब कुछ गंवा चुका हूँ। पहले धंधा काफी अच्छा हुआ। उसके बाद काफी रुपयों का माल मैंने स्टाक कर लिया, और यही काल हुआ। पहले मिलटरी जिस किस्म का माल चाहती थी, उस किस्म की अब आवश्यकता नहीं है। मेरे पास रखा माल अब 'आड साइज' का हो गया है। बिक्री नहीं है, स्त्री-पुत्र के साथ अब बिना खाये मरने जैसी स्थिति है।"

"अरे, लगे रहो, सब ठीक हो जायगा।"

"आपने तो कह दिया, परन्तु युद्ध प्रायः शेष हो रहा है । इस समय वह माल निकल पायगा, ऐसा विश्वास नहीं होता ।"

इसी समय हम तीनों के बीच एक भिखारिणी आकर खड़ी हो गयी, और भिक्षा के लिये रोने लगी।

हम लोगों को तुरत जाना होगा, यह सोचकर मैंने तुरत मनी बैग,बाहर निकालना शुरू किया। मुझे रोकते हुए, कालीदा कह उठे,"अरे निताई,इस लड़की को कुछ पैसा देकर जल्दी बिदा करो।",

निताई को इधर-उधर किसी पाकेट में जब कुछ नहीं मिला, तब अंततः भीतर वाली जेब से एक,एक रुपये का नोट निकालकर उसने भिखारिणी को दे दिया।

"आज एक जरुरी कार्य से जा रहा हूँ रे, निताई"—कह कर कालीदा मेरे साथ ट्राम की ओर रवाना हुए । निताई पैदल ही बहू बाजार रोड पकड़ कर आगे बढ़ गया।

लगभग सात दिन बाद निताई घोषाल, कालीदा के श्याम-पुकुर स्ट्रीट वाले घर पर उपस्थित हुआ, तथा उसने साष्टाङ्ग प्रणाम किया ।

"क्यों रे, इस बार तो लगता है भक्ति और प्रवल हो गयी है। मामला क्या है ?"

प्रत्युत्तर में निताई घोषाल ने जो कहा, उसका सारांश:

—उस दिन भिखारिणी को आपके सामने ही एक रुपया दे दिया था, वह तो याद होगा ? उसके अलाबा एक पैसा भी मेरी जेब में नहीं था । आपने देने को कहा था, जिसे अमान्य करना मेरे लिये संभव नहीं था। इसी कारण वह एक रुपये को नोट उसे दे दिया। ट्राम या बस का किराया भी जेब में नहीं है, घर कैसे जा पाऊँगा ? यही तय किया कि पैदल ही जाऊँगा, स्वास्थ्य के लिए भी लाभ कर होगा । प्रायः एक घंटा चलने के बाद उल्टाडांगा पुल पर पहुँचा। सहसा देखा कि दूसरी तरफ से कोई मेरा नाम लेकर पुकार

रहा है। कह रहा है कि, घोषाल महाशय एक जरुरी बात करनी हैं। वह व्यक्ति युद्ध सामग्री के सप्लाई बाजार का एक पुराना दलाल है। मेरे घर में जो 'आड साइज' का माल रखा हुआ है, उसीके संबन्ध में उसने कहा।"सहसा एक 'एनक्वायरी' आयी है, कि इस माल को किसी भी कीमत पर मिलिटरी सप्लाई विभाग खरीदना चाहता है। बाजार में यह माल इस समय मिलना संभव नहीं है।" मेरे पास ही वह माल काफी था—असली बात नहीं बता कर, मैंने भाव काफी बढ़ा कर उससे कहा। इसी एक 'डोल' में, कालीदा, मैं प्रायः साठ हजार रुपया पा गया हूँ। मैं जानता हूँ कि यह आप की कृपा से ही हुआ है!"

"क्यों? यह धारणा तुम्हारी हुई कैसे?"

"वाह। आपके कहने के मुताबिक उस दिन भिखारिणी को पाकेट का एक मात्र रुपया नहीं देता तो उस दलाल से संभवतः दा-चार मास में भी मेरी मुलाकात ही नहीं होती। सारा रास्ता पैदल चल कर ही गया था, इसीलिए तो यह सुयोग मिल पाया।"

आप लोग थोड़ी प्रतीक्षा करें,कह कर घोषाल बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद ही वह ढेर सारी मिठाई लेकर हाजिर हुआ। उस समय कालीदा के पास-आठ दस आदमी बैठे थे, सभी को धोषाल ने सारी मिठाई खिलाया।

थोड़ी देर बाद ही निताई घोषाल बाहर जा रहा है। हाथ जोड़ कर उसने कालीदा से कहा,"दादा, इस बार भी मेरे ऊपर एक कृपा करनी होगी। नहीं, कहने पर आपके चरण मैं छोड़ने का नहीं।"

"क्यों, तुम्हें और रुपये चाहिये क्या? इतना लोभ होने पर अंत में देखोगे, कुछ भी नहीं है।"

नहीं दादा यह उच्च स्तर की कृपा है।"

कालीदा अट्टहास करते हुए बोले "क्या है, कहो तो"।

"दादा मद्रास से माल लाने जा रहा हूँ। वहाँ से तिरुवन्न-मलाई पास ही है। वहीं महर्षि रमण रहते हैं। पाल ब्रन्टन की पुस्तक से उनकी जीवनी तथा माहात्म्य की बात जान सका हूँ। सोच रहा हूँ, कि मद्रास से वापस आते समय महर्षि का एक बार दर्शन कर आऊँ।"

"ठीक तो है। महात्मा के दर्शन कर के आओ। यह तो बड़ी अच्छी बात है।"

"किंतु दादा, मेरी एक विशेष प्रार्थना है। आप मेरे मस्तक पर हाथ रख कर, आशीर्वाद दें कि वहाँ जाने पर महर्षि, सबसे अलग, मेरे ऊपर थोड़ी विशेष कृपा, विशेष 'फेभर' करें।"

"क्या पागलों जैसी बात कर रहे हो।"

"नहीं दादा, यह आशीर्वाद नहीं मिलने पर मैं आपको छोड़ने का नहीं।" कहते हुए निताई घोषाल ने दादा के खड़ाऊँ को दोनों हाथों से पकड़ लिया।

"देखो तो, यह पागलपन का तमाशा !" कहते हुए हँसते-हँसते "दादा ने घोषाल के माथे पर हाथ रखा। जाओ,महर्षि तुम्हारे साथ 'स्पेशल फेभर' करेंगे। अभी घर जाओ।"

पन्द्रह दिन बाद निताई घोषाल दादा के पास पुनः उपस्थित हुआ। दोनों पैर पकड़ लिए तथा जार-जार रोने लगा।

"अरे क्या हुआ,कहोगे भी,केवल रोते ही चले जा रहे हो। हँस कर कालीदा ने कहा।"

कुछ स्वस्थ होकर घोषाल ने सारी बातें कहना शुरु किया :

दादा,आपकी महिमा हम लोग समझ कैसे पाँयगे ? हम लोग मूर्ख साधारण संसारी लोग मात्र हैं। तिरुवन्नमलाई स्टेशन से एक घोड़ा गाड़ी लेकर महर्षि रमण के आश्रम में पहुँचा। गेट के सामने ही महर्षि प्रसन्न मुद्रा में खड़े थे, तथा आस-पास भक्तों का एक झुन्ड था।

मेरे गाड़ी से उतरते ही महर्षि ने परम स्नेह से मेरा आलिंगन किया तथा एक हाथ से मुझे आबद्ध करके खड़े रहे। मैं एक विशिष्ट

अतिथि हूँ,यह समझ कर सभी भक्त हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगे।

उसके बाद मुझे साथ लेकर, इस छोटे 'प्रोसेशन' के साथ महर्षि अपने व्यक्तिगत हाल वाले कमरे में आकर बैठे। बीच-बीच में प्रसन्न मुद्रा में मेरी ओर देखते जा रहे हैं, तथा भक्तों को मेरे स्नान,आहार तथा वास स्थान की व्यवस्था का निर्देश दे रहे हैं।

मेरे पास ही नंगे बदन, केवल एक सफेद लुंगी पहने, एक अंतरंग भक्त थे। सुना, वे बम्बई हाइकोर्ट के जज थे और महर्षि के आश्रमवासी हैं। उन्होंने मुझसे कहा, "आपके पहुंचने के काफी पहले से ही 'भगवान' आश्रम के गेट के सामने चहलकदमी कर रहे थे, और-उत्सुक होकर दूर रास्ते की ओर देख रहे थे। 'हाल'वाले कमरे से शायद ही वे कभी बाहर जाते हैं। इस तरह किसी बड़े साधु अथवा राजे–महाराजाओं की भी उन्होंने कभी अभ्यर्थना नहीं की। हम लोगों ने ऐसा दृश्य कभी देखा भी नहीं।"

एक पत्रकार भक्त ने तो छूटते ही प्रश्न कर ही दिया, "आपके प्रति महर्षि की इस'स्पेशल' कृपा का कारण क्या है, कृपया बतायें ? ऐसा तो किसी ने कभी इस आश्रम में देखा नहीं।"

कई बार, एक ही प्रश्न को सुनकर मैंने झुँझलाकर कहा, "कलकत्ते में महर्षि के एक पुराने बंधु हैं। उन्हीं के पास से मैं आ रहा हूँ। इसी कारण उन्होंने मुझे इतना स्नेह तथा आदर दिया।"

सभी भक्त चौंक पड़े। कहा, "कलकत्ते में उनके कोई घनिष्ट बंधु हैं, ऐसा तो हम लोगों ने कभी सुना नहीं! उनका नाम-पता तो बताइये-उनके पास से संभव है हम लोग महर्षि के जीवन के अनेक अज्ञात तथ्य जान पायें।"

श्री युक्त कालीदा की ओर देख कर घोषाल ने कहा, "चिंता नहीं करेंगे, आपका नाम तथा पता मैंने नहीं बताया। देने पर निश्चय ही आप खड़ाऊँ से मेरी पिटाई करते! उन भक्तों से मैंने कहा,"भाई उनका परिचय देने का आदेश नहीं है। वह मैं नहीं दे सकता, माफ करेंगे।"

—जब कलकत्ता रवाना हो रहा था, इन पत्रकार भक्त ने मेरा पीछा किया। वे सत्तर मील दूर चिदबरम तक साथ आये। बार-बार एक ही प्रश्न—आपके नाम तथा पता का संधान। आपके भय से मैंने इस विषय में ट्रेन में सारे रास्ते भर बराबर ही मौन का अवलम्बन किया। उसके बाद हताश होकर वे वापस चले गये।

"हाँ, तुमने बुद्धिमान जैसा ही कार्य किया है"-श्री युक्त कालीदा ने अपना विचार प्रकट किया।

सोचने लगा, महर्षि रमण से उनका किसी दिन साक्षात् हुआ नहीं, परन्तु महर्षि ने उनके माहात्म्य का ध्यान रख कर ही, उनके द्वारा प्रेषित बंधु को स्नेह दान करने में त्रुटि नहीं कर पाये।

महायोगी, भोलानन्द गिरी जी, 'बंधु' के एक श्रेष्ठ कृपा पात्र महापुरुष थे। कालीदा से सुना था, गिरी जी के संबन्ध में कोई प्रसंग उठने पर 'बंधु' के नेत्र तथा मुख आनंदातिरेक से भर उटते। स्नेह पूर्वक उनका उल्लेख वे 'भोला' कह कर ही करते।

एक दिन कालीदा से 'बंधु' ने कहा था, "तुमको पहला धक्का तो मैंने भोला से दिलवाया था। तुम्हारे ही अंचल में, तुम सब के साथ साक्षात् करने के लिए बजितपुर गये थे। वहाँ उनके जाने का प्रधान लक्ष्य तुम्हीं थे।"

गिरी महाराज जानते थे, कि साक्षात् पूर्ण ब्रह्म की लीला के अवतरण होने के पूर्व ही वे देहत्याग कर देंगे। इस संदर्भ में एक मर्मस्पर्शी कहानी, श्री युक्त कालीदा से ही उनके अंतरंग भक्तों ने सुनी है। संक्षेप में उनका वर्णन कर रहा हूँ :—

उत्तर प्रदेश में एक छोटा शहर बिजनौर है। धर्म प्राण, शुभ्र-चरित्र, सूर्य प्रकाश पाण्डे, यहीं के निवासी हैं। एक स्थानीय स्कूल में मास्टरी करते हैं, तथा शेष समय शिव पूजा तथा ध्यान जप में काट देते हैं।

उनकी गृहस्थी में केवल स्त्री और एक मात्र कन्या, दुलारी, है। दुलारी, जब दो वर्ष की ही थी, उसी समय माँ ने देह त्याग कर दिया। उस समय से सूर्य प्रकाश जी को ही पिता तथा माता दोनों की भूमिका निभानी पड़ी।

कन्या दुलारी, परम सुन्दरी तथा लावण्यवती थी और पिता के आश्रय में दिन प्रति दिन चन्द्रकला जैसी बढ़ती जा रही थी।

लगभग दस वर्ष बाद की घटना। छोटे शहर में उस दिन सहसा चहल-पहल हो गयी। हरिद्वार के विख्यात् मण्डलीश्वर महा-योगी भोला गिरि जी का शिष्य के घर पर आगमन हुआ है। वहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ लग गयी है।

सूर्य प्रकाश महापुरुष के दर्शन हेतु व्यग्र हो उठे। कन्या दुलारी भी परम भक्ति मती है, नित्य ही देवता की पूजा सजाती है तथा भक्ति पूर्वक ठाकुर को प्रणाम करती है। दुलारी को साथ लेकर, सूर्यप्रकाश जी, गिरि महाराज के दर्शन हेतु गये।

दुलारी के प्रणाम करते ही, गिरि महाराज, चकित हो गये। अपलक नेत्रों से कुछ देर तक उसे देखते रहे। रुप लावण्यवती बालिका का मुख दोनों हाथों से कुछ देर तक पकड़े रहे। प्रसन्न मधुर स्वर में उन्होंने कहा, "पुण्यमयी माई,अमृतमयी माई।"

कुछ देर तक ध्यानस्थ रहने के बाद योगिराज ने दुलारी से फिर कहा, "तुम्हारे साथ 'उसका' साक्षात् होगा। ईश्वर मनुष्य देह धारण करके आ रहे हैं। तेरा परम सौभाग्य है कि तू उनका दर्शन तथा कृपा पाएगी। मैं उस समय इस शरीर में नहीं रहूँगा। मेरी बात का उस समय तुझे ध्यान तो रहेगा ?"

इतनी सारी बातों का अर्थ तथा तात्पर्य दस वर्षीय कन्या ने जाना या नहीं, कौन जाने ? किंतु सिर हिलाकर उसने महात्मा को जतलाया कि उस समय वह सारी बातें याद रखेगी।

कन्या युवती हो रही है। अब सूर्य प्रकाश उसके विवाह के

लिए प्रयत्नशील हो गये ।

उनका कुल -शील बहुत अच्छा है, कन्या भी परम रुपवती है, इस कारण शिक्षित घर का वर प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई । एक मात्र कन्या का विवाह, सूर्य प्रकाश जी ने काफी उत्सव तथा जोश के साथ संपन्न किया ।

किंतु छः मास बीतते-बीतते नियति का आघात आकस्मिक रुप से आ पड़ा । दुलारी विधवा होकर पिता के घर वापस आ गयी ।

आघात दुःसह था,पर कन्या का मुख देख कर किसी तरह पिता ने अपने को संभाल लिया । इष्ट पूजा, तथा जप और ध्यान में डूब कर कन्या की इस असहाय अवस्था की बात को वे भूले रहना चाहते हैं ।

तीन वर्ष के बाद, सहसा सूर्य प्रकाश जी के जीवन में मर्मान्तक आघात् आया, जो कि कन्या के वैधव्य से भी प्रचंड था । दुलारी का पास के ही एक जमीदार के पुत्र से प्रेम हो गया था, और वह उसके साथ भाग गयी । सुना गया कि कानपुर में कुछ दिनों तक अज्ञात रुप से रहने के बाद वे कलकत्ता जाकर विवाह बंधन में आवद्ध हो गये हैं, और वहीं दोनों स्थायी रुप से रहने लगे हैं ।

सूर्यप्रकाश जी, शोक तथा दुःख से टूट पड़े हैं । सोचते हैं कि यह कुल त्यागिनी कन्या, जन्म के बाद ही क्यों नहीं मर गयी । सजल नेत्रों से अपनी पत्नी का स्मरण हो जाता है, मन ही मन कह उठते हैं, "तुम भाग्यवती थी, मर जाने से इस लोकापवाद को सुनने से तो बच गयी । कुलटा कन्या द्वारा प्रदत्त यह तीर जैसा आघात् तो तुम्हें नहीं सहन करना पड़ा ।"

योगीराज भोला गिरी जी की बात, उन्हें स्मरण हो जाती । उन्होंने दुलारी को कितना आदर देते हुए कहा था—पुण्यमयी माई अमृतमयी माई ?

सूर्य प्रकाश जी अविश्वास की हँसी हँसते, साथ ही दुःख तथा दुश्चिंता में जलते रहते । मन ही मन यह भी कहते, "ऐसा लगता है कि ब्रह्मविद तथा महायोगी पुरुषों की भी भविष्यवाणी असत्य हो जाती है । भोला गिरि महाराज ने जिसे पुण्यमयी और अमृतमयी कहा था, वह आज अपने पवित्र कुल में कालिख लगा कर कुलत्यागिनी हो गयी है ।"

इसी बीच १९२८ ई० में भोलागिरि जी का देहावसान हो गया है, नहीं तो सूर्यप्रकाश जी एक बार उनके सम्मुख उपस्थित होते तथा शोकार्त्त क्रुद्ध चित्त की वेदना कहते—"प्रभु आपकी भविष्यवाणी सत्य नहीं है, यह प्रमाणित हो गया है ।"

एक मात्र, प्राणाधिक कन्या को भूलने का भी तो कोई रास्ता नहीं है । शयन गृह में पत्नी की फोटो के पास ही दुलारी का फोटो भी टंगा है । जब भी उस ओर सूर्यप्रकाश जी देखते हैं, उनके नयन द्वय अश्रुसजल हो उठते हैं । वे इष्टदेव का स्मरण करके बराबर कन्या के कल्याण की कामना करते हैं ।

१९४८ साल । श्यामपुकुर वाले घर में, उस दिन रात में, मैं तथा हेम सोमदा प्रतीक्षा कर रहे थे । आजकल उनके (कालीदा के) वापस आने में प्रायः ही देरी हो जाया करती है । उनके वापस न आने तक हम सभी भोजन पर बैठ नहीं पाते हैं । सोने का तो प्रश्न ही नहीं । उनके साथ, एक ही घर में मैं तथा हेम सोमदा सोते हैं, एवं रात्रि जितनी अधिक बीतती जाती है, कालीदा की 'एनर्जी' उतनी ही बढ़ती जाती है । सोते-सोते प्रायः रात के दो-तीन बज जाते हैं, तथा किसी-किसी दिन सुबह भी हो जाती है ।

छोटे कर्त्ता कभी-कभी कालीदा को सावधान भी कर देते हैं, तथा विनोद करते हुए कहते है, "तुम तो दुनियाँ के श्रेष्ठ उन्माद हो, निद्रा तो तुम्हारे पास से भाग ही गयी है । दस-बीस वर्ष न सोने से भी तुम्हारा कुछ नहीं होगा, किंतु इन दो भक्तों, प्रमथ और हेम को तो

यह मारने का ही उपक्रम है। अगले तीन दिनों में अधिक देरी मत करो तथा उन दोनों को सो कर थोड़ा स्वस्थ हो लेने दो।"

उस दिन रात के बारह बजे के लगभग कालीदा वापस आये। स्थान तथा भोजन समाप्त करके उन्होंने सोत्साह एक विस्मयकर घटना का वर्णन आरंभ किया :

रात के दस बजे थे। सहसा कुछ ध्यान आया और कालीदा, एसप्लेनेड में एक रिक्शे पर बैठ गये। सेन्ट्रल एभेन्यू पकड़े जा रहे हैं। विवेकानन्द रोड की क्रॉसिंग पर ही देखा कि दियासलाई समाप्त हो गयी है। रास्ते के पास ही लैंप पोस्ट के पास, अच्छे कपड़े पहने हुए एक अन्य प्रदेश का युवक खड़ा है।

पास पहुँचते ही उन्होंने रिक्शे को रोका। पुकार उठे, "माचिस है।" उसने अपनी दियासलाई निकाल कर दी। सिगरेट जलाते ही, कालीदा की दृष्टि युवक के करुण मुख की ओर पड़ी। साथ ही साथ चित्रपट जैसा, एक करुण दृश्य आँखों के सामने घूम गया—एक परम सुन्दरी कन्या वेदनार्त्त होकर क्रन्दन कर रही है।

रिक्शे को उन्होंने विदा कर दिया। तुरत युवक के मुख की ओर देखते-देखते, मुँह से जोर से निकल पड़ा—'इडियेट'।

युवक हत्वाक होकर रह गया। धवल खद्दर की धोती पहने, माथे पर काली टोपी दिए, ये सुदर्शन एवं तेजोद्दीप्त सज्जन उसे धमका क्यों रहे हैं? यह तो बहुत ही रहस्यात्मक है।

युवक एक महान चिंता लिए टैक्सी के लिए खड़ा है। घर पर उसके मित्र की पत्नी, भयानक बीमारी की स्थिति में है। अभी एक बड़े सर्जन के पास जाना होगा, और जितना भी पैसा क्यों न लगे, उन्हें घर लेकर आना होगा। सर्जन महोदय अपराह्न में कह गये हैं, कि काफी पुराना विषाक्त ट्यूमर या कैन्सर है। रोग प्राण-घाती है और रक्तस्राव किसी तरह बन्द नहीं हो पा रहा है।

अंतर्यामी कालीदा, फिर उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए,

कह उठे—"तुम्हारा सर्जन भी 'ईडियेट' है वह कुछ भी समझ नहीं सका है। इस केस में कुछ भी रिलीफ देने की उसकी सामर्थ्य नहीं है। जल्दी, जहाँ दुलारी है, वहाँ चलो।"

युवक विस्मित हो उठा। दुलारी ? यह नाम इन बंगाली सज्जन ने किस तरह जाना ? दुलारी उसके मित्र की पत्नी है। उसी के लिए तो वह सर्जन की खोज में बाहर निकला है।

अब मंत्र मुग्ध जैसे, युवक कालीदा को साथ लेकर चल पड़ा। एक दुमंजिले मकान के सामने जाते ही कालीदा बोल उठे—यही तो मकान है।

दुमंजिले पर जाते ही उन्होंने पास वाले कमरे से ही एक स्त्री की वेदनार्त्त पुकार सुनी। तुरत उस कमरे में घुस पड़े।

पलंग पर मुमूर्षु दुलारी सोयी हुई है और पास ही एक कुर्सी पर उसका स्वामी बैठा हुआ है। सिर घुमाते ही दुलारी विस्मित हो उठी, तथा आनंद से चीख उठी, "यह क्या ? यह तो तुम हो ! तुम इसीलिए आये हो। इतने दिनों बाद इस अभागिन के पास आये हो। पूजा पर बैठने पर प्रायः प्रतिदिन कृपा करके सामने आकर खड़े हो जाते हो, फिर अंतर्धान हो जाते हो। आज तो कृपा हो गयी"।

दुलारी का स्वामी, विस्मित होकर सारी बात सुन रहा है। अवाक् तथा विस्मित होकर बार-बार इस खद्दरधारी, तेजस्वी तथा सौम्य बंगाली सज्जन की ओर देख रहा है।

अब उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए श्री युक्त कालीदा, दृढ़ स्वर में बोल उठे, "ईडियेट ! जाओ बाहर जाकर प्रतीक्षा करो।"

मंत्र मुग्ध जैसे युवक उठ कर बाहर चला गया। कालीदा ने फिर कहा, "दरवाजा बन्द कर दो।"

उसी क्षण दुलारी, कालीदा के पैरों पर लोट गयी। पास वाली कुर्सी पर बैठते हुए कालीदा ने कहा, "उठ कर बैठो माँ, और

रोओ नहीं ।"

उसके उठ कर बैठ जाने पर, अपने पैर के अंगूठे से कालीदा ने उसकी नाभि का स्पर्श किया । उसके बाद एक सिगरेट सुलगा कर दो-तीन मिनट तक शांत होकर बैठे रहे । अब प्रश्न हुआ, "दुलारी अब कैसी हो, बता तो ?"

"रक्त स्राव बंद हो गया है । व्यथा -वेदना भी अब बिलकुल नहीं है ।"

"बड़ी अच्छी बात है। अच्छा, तुम्हारे घर में गंगाजल है ?"

"है तो, कहते हुए, दुलारी कमरे के एक कोने से गंगाजल का पात्र ले आयी"।

"मेरे शरीर तथा माथे पर गंगाजल छींट दो, और पैर के अंगूठे पर भी थोड़ा जल डाल दो ।"

कालीदा ने फिर कहा, "तुम्हारी नई गरद की साड़ी तथा नया आसन है ?" सिर हिलाकर दुलारी ने स्वीकारोक्ति दी । पास वाली आलमारी खोलकर जल्दी से दोनों निकाल कर सामने लाकर रख दिया ।

"गरद की साड़ी पहन कर, इस आसन पर बैठ जा, तथा आसन साड़ी तथा अपने शरीर पर गंगाजल डाल कर शुद्ध हो जाओ । अब ध्यान में बैठ जाओ ।"

कालीदा ने कुछ देर तक दुलारी का मेरुदण्ड स्पर्श किया । उसके बाद उस घर से अलौकिक योग विभूति द्वारा अंतर्धान हो गये ।

इस बीच लगभग एक घंटे का समय बीत चुका है । दुलारी का पति कांतिलाल और उसका मित्र, इस अवधि में मंत्रमुग्ध जैसे घर के बाहर ही बैठे थे । अब साहस करके धीरे-धीरे दरवाजे को खोल कर देखते हैं कि वे अद्भुतकर्मा महापुरुष, घर से अदृश्य हो गये हैं, तथा दुलारी नीरव, निस्पन्द अपने ध्यानासन पर बैठी हुई है ।

बहुत देर बाद उसका ध्यान भंग हुआ । उस समय उसके अंदर एक नवीन रुपान्तर हो गया था ! बार-बार उसे याद आने लगी, महायोगी भोला नंद गिरि महाराज की बात । दोनों नेत्रों से पुलकाश्रु झड़ रहे हैं, तथा भोला गिरि महाराज को बार-बार श्रद्धा पूर्वक प्रणाम कर रही है ।

प्रायः दो वर्ष बाद हम लोगों ने दुलारी का प्रसंग फिर कालीदा के पास उठाया था। हर्ष पूर्वक उन्होंने कहा था :

योगिराज भोलागिरि जी की भविष्यवाणी क्या कभी व्यर्थ हो सकती है ?

मेरे उस दिन के साक्षात्कार के बाद ही दुलारी के जीवन में आमूल परिवर्तन आ गया है । पूर्व जन्म में वह महान तपस्विनी थी । उसी तपस्या की तरंग अब उसको मोक्ष के महासागर की ओर बुवाती चली जा रही है। मेरे निर्देशानुसार वह हिमालय की कंदरा में जाकर, कठोर तपस्या में बैठ गयी है ।

कन्या की इस परम सिद्धि की बात तथा भोला गिरि जी के भविष्यवाणी के सत्य होने की बात, सूर्य प्रकाश जी भी जान गये थे तथा अपार आनंद से उन्मत्त हो गये थे ।

देहान्त से कुछ दिन पहले, सूर्य प्रकाश जी, हरिद्वार तीर्थयात्रा करने गये थे । एक दिन रात में उन्होंने भोला नन्द महाराज को स्वप्न में देखा। महाराज के मुख तथा नेत्रों में दिव्य आनंद की छटा थी । उन्होंने सूर्य प्रकाश जी का परम स्नेह से आलिंगन किया,तथा कहा, "सूर्यप्रकाश, तुम दुखी न हो । मेरी भविष्यवाणी सत्य ही फलवती हो गयी । दुलारी, कहाँ और कैसी है, देखोगे ? फिर एक बार सामने देखो ।"

सूर्य प्रकाश जी ने देखा, हिमवन्त की गोद में, परम सिद्धा तपस्विनी दुलारी उपस्थित है—और उसके अंगों की दिव्य ज्योति से सारा अंचल ओत-प्रोत हो उठा है ।

दूसरे दिन भोला गिरि जी के आश्रम-मंदिर जाकर सूर्य प्रकाश जी ने बार-बार माथा पटका, तथा रोते-रोते कहा; "प्रभु, आपकी बात मिथ्या नहीं हुई, मेरी दुलारी सत्य ही पुण्यमयी तथा अमृतमयी है। मैंने तुम्हें समझने में भूल की, मुझे क्षमा करो।"

स्वयं ब्रह्म'बंधु'से अंतरंग आत्मिक आधार द्वारा भोला नंद गिरि जी संबद्ध थे। उसी योग सूत्र के आधार पर उन्हें ब्रह्मावतार योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय को जानने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

हिमालय के नीचे, समतल भूमि पर, पुरी धाम के नंगाबाबा महाराज, श्रेष्ठ वेदान्ती एवं आत्मज्ञानी महापुरुष थे। उनकी अवस्था लगभग ढाई सौ वर्ष की थी। अनेक ब्रह्मविद महापुरुषों से मैंने सुना है, कि वही ठाकुर श्री रामकृष्ण के गुरु, तोतापुरी महाराज थे। श्रीयुक्त कालीदा से इन महात्मा का साक्षात्कार कभी नहीं हुआ था, किंतु अंतर के सूत्र से दोनों का अंतरंग परिचय था।

कालीदा के जो भी परिचित उनके दर्शन करने जाते, ये शुष्क वेदान्ती, अपार स्नेह तथा ममता के साथ उनकी अभ्यर्थना करते।

एक बार हमारे एक मित्र, पुरी धाम घूमने के लिए गये, और वहीं नंगा बावा के दर्शन करने को चले गये। कालीदा के पास से आये हैं, यह जानते ही महाराज ने उनको प्रचुर आदर दिया। उसके बाद उन्होंने एक विपज्जनक परिहास किया। कहा, "अरे तुम तो इधर-उधर घूमता है,और उधर कलकत्ता के'हिमाद्रि'आफिस में बैठ कर काली पद जी कितने आदमियों को ब्रह्मज्ञान दे देता है।"

मित्र चंचल व क्षुब्ध हो उठे। कलकत्ता वापस आते ही क्षोभ से कालीदा के सामने फूट पड़े! बड़ी मुश्किल से उन्हें शांत किया जा सका।

बाद में कालीदा ने श्यामपुकुर स्ट्रीट वाले मकान में मुझे तथा

मित्रवर रोहिनी अधिकारी से कहा था, "कौन कहता है कि नंगा बाबा महाराज शुष्क वेदान्ती हैं ? देखिये उनके एक परिहास के कारण मेरे प्राण संकट में हैं।"

प्रख्यात 'डायरेक्टर' मधु बोस कालीदा के घनिष्ट भक्तों में से थे। उनकी एक फ्रांसीसी मित्र मिसेज रोजन वर्ग ने कलकत्ता आने पर कालीदा से साक्षात्कार किया। इस साक्षात् की परिणति गंभीर श्रद्धा में हो गयी। हम लोगों के साथ भी मिसेज रोजन वर्ग की घनिष्टता हो गयी। वे हम लोगों के घर पर भी आने-जाने लगी, तथा अनेक आध्यात्मिक प्रसंगों पर बातचीत करती।

एक दिन कालीदा ने हँसते हुए कहा, "देखिये, यह स्त्री परम भक्तिमती एवं तत्व जिज्ञासु है, इसमें संदेह नहीं। किन्तु भारत में आकर एक-दो नंगे जटाधारी साधुओं को न देख लेने पर उसके मन में थोड़ा क्षोभ तो रह ही जायगा। इसके लिये क्या कोई व्यवस्था हो सकेगी ?

मैंने कहा, "काफी सरल उपाय है। हेरम्ब दा को साथ कर के उसे पुरी, नंगा बाबा के पास भेज दीजिए।"

बंधुवर हेरम्ब मुकर्जी तीन मास तक नंगा बाबा के आश्रम में रह कर आये हैं। कालीदा के मित्र होने के कारण बाबा का स्नेह तथा प्रेम भी उन्होंने यथेष्ट मात्रा में पाया है।

बात कालीदा को बहुत पसन्द आयी। परन्तु हेरम्ब दा को इस प्रस्ताव से बहुत उत्साह नहीं हुआ। उन्होने कहा, "उस आश्रम में किसी स्त्री को रात में ठहरने नहीं दिया जाता है। इसके अलावा, ये तो शुद्ध फ्रेन्च लेडी हैं।"

कालीदा ने कहा, "मैं जो कहता हूँ, वही आप करिये न ! आप देखेंगे कि नंगा बाबा मिसेज रोजन वर्ग को अत्यन्त स्नेह के साथ ग्रहण करेंगे।"

वही हुआ। मिसेज रोजन बर्ग, बाबा के आश्रम में एक मास से भी अधिक समय व्यतीत कर आयीं। आने पर सानन्द श्री युक्त कालीदा से कहा, "इन जटाधारी तथा नंगे भारतीय साधु को मैं

इस जीवन में कभी भूल नहीं, पाऊँगी। मेरी योग्यता क्या है ? किंतु यह भली भाँति समझती हूँ, कि आपके पास से गयी थी, इसी कारण उन्होंने इतनी कृपा की।"

एक दिन कर्जन पार्क में बैठकर कालीदा की छोटे कर्त्ता के साथ नाना प्रसंगों पर वार्ता हो रही थी। उन्होंने सहसा प्रश्न किया, "अच्छा, इतने वर्षों से अनेक ब्रह्मविदों की बात मैंने आपके पास सुना। परन्तु, इन कई शतकों में, इ.त युग के सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मविद कौन हैं, यह तो बताइये ?"

उत्तर मिला, "नटराजन अइयर। मद्रास के एक अति साधारण तथा अख्यात होटल के वे मालिक थे।"

"एँ, आप क्या कहते हैं ? कोई भी तो उनका नाम नहीं जानता है।"

"ब्रह्मज्ञ समाज तो उनको अच्छी तरह जानता था। और किसी के जानने या न जानने से उनकाक्या प्रयोजन था ? जब बात उठ ही पड़ी तो यह भी बता देता हूँ, कि वे अपनी साध पूरी करने के हेतु तुम्हारा दर्शन करने भी गये थे। कुछ दिन पहले ही उनका देहान्त हुआ है।"

"कब और कहाँ, मेरे साथ साक्षात् हुआ था, यह तो बताइये।"

"काफी दिन पहले तुम बक्सा कैंप में राज बन्दी थे। उस समय राजन या राजू नाम का एक फालतू कैदी भृत्य था या नहीं?"

"हाँ, था तो, मेरी बात खूब मानता था, तथा मेरी प्रचुर सेवा भी करता था।"

"वही तो महाब्रह्मज्ञ नटराजन अइयर था।" तुम्हारा दर्शन तथा सेवा करने की उसकी प्रबल इच्छा थी, अतएव वह जान बूझकर एक चोरी के केस में पकड़ कर हाजत में पहुँच गया। उद्देश्य केवल इतना ही था कि बक्सा कैंप में तुम्हारा फालतू होकर कुछ दिन तक रहना। अपना शरीर बहुत अधिक दिनों तक नहीं

रखना है, यह उसने तय कर लिया था । इसी कारण, पहले ही तुम्हारा दर्शन व सेवा शेष कर गया।"

"यह तो बड़ा ही अद्भुत है ! आपके नहीं बतलाने पर तो मैं इस बात पर विश्वास ही नहीं करता । उसकी पूरी बात तो बताइये ।"

प्रसन्न मुद्रा में छोटे कर्त्ता ने अपने परम प्रिय भाजन नटराजन अइयर की कहानी का उद्घाटन किया :

मद्रास के एक छोटे से गाँव में, परम सात्विक ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ था। परन्तु अपने बाल्यकाल में वह जड़ बुद्धि था, जिसे बौड़म कह सकते हैं। कोई बात भी नहीं कर पाता था, मस्तिष्क भी कोई बात नहीं सोच पाता था। दर असल, वह जन्म से ही आत्म लीन था, तथा सदा ब्रह्म के ध्यान में निमग्न रहता था।

घर के तथा गांव के लोग भी उसे बेकार ही समझते थे, तथा उसकी बात में अपना समय नष्ट नहीं करते थे।

यज्ञोपवीत ग्रहण के बाद कई वर्ष कट गये हैं । उस समय नटराजन की अवस्था लगभग बारह वर्ष थी। उन्हीं दिनों एक अद्भुत धटना घट गयी। एक विशेष पर्व के दिन सात-आठ वरिष्ठ सन्यासी ग्राम में प्रवेश कर, नटराजन के द्वार पर उपस्थित हुए । कुतूहल पूर्वक, सभी के साथ नटराजन भी वाहर आकर खड़ा हुआ । अब सन्यासी लोग उसे घेर कर खड़े हो गये, तथा श्रद्धा पूर्वक, उसकी स्तुति करने लगे, तथा उन्होंने उसकी कई बार प्रदक्षिण भी की। उसके बाद उसे साष्टांग प्रणाम करके, गाँव से कीर्त्तन करते-करते बाहर चले गये।

परन्तु नटराजन इस अवधि में मोहाविष्ट जैसे खड़ा रहा। सन्यासियों के चले जाने पर उसका वाह्यज्ञान लुप्त हो गया और वह धरती पर गिर पड़ा। कई घंटे बाद, उसकी यह संज्ञाहीन अवस्था ( निर्विकल्प समाधि ) भंग हुई।

ग्राम के बहुत से नर नारी उस दिन सन्यासियों का यह कान्ड देखकर अवाक् हो गये। उन लोगों ने घटना को केवल साधुओं की मौज ही समझा। उन्होंने समझा कि इससे तो राजू को कोई न तो पंख ही लग गये, न माहात्म्य ही बढ़ा !

कई मास बाद की बात ! गाँव के एक दुखी विधवा महिला का पुत्र 'कॉलेरा से आक्रान्त हुआ। लड़का महिला की एकमात्र, संतान था।

गाँव में उसकी चिकित्सा की कोई व्यवस्था नहीं थी, तथा दु:खिया माँ के पास पैसा भी नहीं था। ईश्वर ही उसका एक भरोसा था। सहसा, उसे याद आया—उस दिन सन्यासियों का एक दल नटराजन की श्रद्धा पूर्वक इतनी स्तुति कर गया था। हम लोग उसे बौड़म समझते हैं, परंतु संभव है सन्यासी लोग उसके भीतर कोई गुप्त दैवी शक्ति देख पाये हैं। फिर उसके पास ही जाकर एक बार क्यों न देखूँ ? संभव है वह मेरे बच्चे को बचा सके ?

विधवा रोते हुए नटराजन के पैरों में लोट पड़ी। आर्त्त स्वर में बार-बार प्रार्थना करने लगी—बाबा, मेरे बच्चे को तूँ बचा दे। मैं जानती हूँ, तेरे पास वह शक्ति है।

विधवा की अति चीत्कार तथा रुदन से नटराजन की अंतर्निहित सुप्त शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। धीरे-धीरे उसके घर की ओर चल पड़ा। रोगी के सिरहाने बैठकर उसके मस्तक पर बार-बार हाथ फेरने लगा।

मुमुर्षु रोगी ने धीरे-धीरे आँखें खोली। अब विधवा की ओर देखकर नटराजन प्रसन्न मुद्रा में हँसने लगा।

इस अवधि में दर्शकों की बड़ी भीड़ वहाँ जमा हो गयी थी। नटराजन इस स्थिति का लाभ उठाकर वहाँ से खिसक गया। सदा के लिए वह गाँव छोड़ कर चला गया। इसके बाद किसी ने उसे उस क्षेत्र में नहीं देखा।

सद्गुरु काफी समय से,हिमालय की पवित्र साधन भूमि में उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं—तथा बार-बार अंतर से नटराजन के लिए आकर्षण भी कर रहे हैं।

पर्यटन करते-करते एक दिन शिष्य, गुरु की साधन गुफा के सामने उपस्थित हुए। दीक्षा की समाप्ति पर नटराजन वहीं पर साधना में बैठ गये। आत्म चेतना का सहस्रदल एक-एक करके उनके जीवन में प्रस्फुटित हो गया।

चालीस वर्षों तक उत्तरा खण्ड के अनेक स्थानों पर योग साधना में निमग्न रहने के बाद, महाब्रह्मज्ञ नटराजन समतल भूमि पर आ गये। मद्रास शहर में आकर उन्होंने गृहस्थ का छद्मवेश धारण किया तथा वृत्ति के लिये एक साधारण होटल वाले का जीवन चुना।

सारा दिन होटल की परिचालन में ही निमग्न रहते-इदली,दोसा और सांम्रम के मूल्य और परिमाण को लेकर खाने वालों से कितनी देर तक नोक झोंक होती रहती है। उसके बाद, निविड़ रात्रि में प्रच्छन्न ब्रह्मविद् साधक अपने परम चैतन्य के अतल तल में डुबकी लगाते हैं।

रात के दस बजते ही नटराजन, होटल बन्द कर देते हैं। छिपा कर रखा हुआ अपना आसन, कमण्डलु लेकर चुपचाप वह मद्रास के सागर तीर पर चले जाते हैं। उसके बाद वहाँ के नीरव वातावरण में समाधिस्थ हो जाते हैं।

होटल का एक युवक कार्यकर्त्ता बहुत सद्प्रकृति का है। केवल यही लड़का जानता है कि अधिक रात हो जाने पर मालिक कहाँ जाते हैं। इस बात को गुप्त रखने का आदेश भी था उसे। अन्य सभी नौकरों की यही धारणा थी, कि मालिक का किसी दूसरी जगह किराए का मकान है, वहाँ कार्य शेष होने पर सोने के लिये चले जाते हैं।

उस दिन मालिक के चले जाने पर होटल के कर्मचारियों में किसी

वात को लेकर काफी झगड़ा हो गया । इस झगड़े में मालिक के मध्यस्थता की आवश्यकता थी । इस समय वही तरुण लड़का सभी को लेकर समुद्र के किनारे उसी निराले स्थान पर उपस्थित हुआ, जहाँ नटराजन ध्यानस्थ हो कर वैठते थे ।

पूर्णिमा की रात थी । चन्द्र देव के आकर्षण से सागर उन्मत्त जैसा हो उठा है । बार-वार लहरें बालुकामय तीर पर आकर लौट जाती है । दूर बालुकामय तीर पर नटराजन ध्यान और जप शुरू करने के लिये प्रस्तुत हो रहे हैं । आसन तथा कमण्डलु रखा हुआ है, और आसपास समतल, सुविधाजनक स्थान खोज रहे हैं ।

इसी समय पूर्णिमा के ज्वार की एक उत्ताल तरंग सों-सों कर आगे आयी । क्षण मात्र में ही उनका पवित्र आसन तथा मंत्र पूत, जल भरा हुआ कमण्डलु डुबा कर ले गयी ।

होटल के विक्षुब्ध कर्मचारी उस समय उनके पीछे काफी समीप आ गये हैं । विचार कर रहे हैं कि इस समय मालिक को पुकारना उचित होगा या नहीं ?

तरंगों का फूत्कार तथा आसन व कमण्डलु के अदृश्य होने का दृश्य उन्होंने पीछे से देखा है । अब उनके समक्ष जो दृश्य आया उसने उन्हें किंकर्तव्य विमूढ़ कर दिया ।

अन्य मनस्क होकर 'आ:' कह कर अपना दाहिना हाथ नटराजन ने उठाया । साथ ही साथ समुद्र के तरंगों का उच्छ्वास स्तब्ध हो गया ।

अब हाथ की तर्जनी से उन्होंने संभवतः कोई आदेश दिया । क्षण मात्र में स्तब्ध समुद्र के वक्ष स्थल से एक छोटा सा जल स्तंभ निकला । धीरे-धीरे, वह आगे आकर नटराजन के सम्मुख बालू के किनारे पर लोट पड़ा । इस जल स्तंभ के वापस जाने पर देखा गया, कि समुद्र आज्ञाकारी भृत्य जैसे बहाया गया आसन तथा

कमण्डलु वापस रख गया है।

होटल के कर्मचारी उस समय भय तथा विस्मय से स्तंभित थे। उन्होंने देखा, कि उनके मालिक नटराजन अइयर, मात्र एक नगण्य होटल वाले नहीं हैं, वरन् असामान्य योग विभूति सम्पन्न एक महायोगी हैं। विक्षुब्ध सागर ने स्तब्ध होकर केवल उनके इंगित मात्र से उनकी आज्ञा का पालन किया, यह सभी ने प्रत्यक्ष ही देखा।

जल सिक्त आसन को निचोड़ कर नटराजन ध्यान में बैठने ही जा रहे हैं, इसी समय कर्मचारी गण साहस संचय करके आगे आये और श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों पर लोट पड़े।

कर्मचारी गण का आपसी झगड़ा न जाने कहाँ विलीन हो गया। हाथ जोड़ कर वे मालिक के सामने खड़े हैं।

मधुर स्वर में नटराजन ने कहा, "तुम लोगों ने तो पीछे खड़े होकर सभी देख लिया। अनायास ही यह बात अब फैल जायगी। इसीलिये अब मेरा मद्रास में रहना सम्भव नहीं होगा। होटल मैंने तुम लोगों को ही दे दिया। तुम सभी मिलकर इसे चलाने की चेष्टा करो।"

प्रणाम करके, कर्मचारी गण वापस आ गये। इसके बाद फिर कभी उन लोगों की मालिक नटराजन से दुबारा भेंट नहीं हुई।

इसके बाद छोटे कर्त्ता ने हँसते हुए श्री युक्त कालीदा से कहा, "कई वर्षों तक नटराजन ने उत्तरा खण्ड में अनेक स्थानों पर निवास किया, कई निर्दिष्ट सिद्ध महापुरुषों को पूर्ण ब्रह्मज्ञान का दान किया। साथ ही वह तुम्हारे दर्शन और सेवा की भी प्रतीक्षा में था। तुम्हारे बक्सा कैंप के बंदी जीवन में, उसका यह अभीष्ट भी पूर्ण हुआ।

कालीदा ने जिज्ञासा की, "जन्मकाल से लेकर बाल्यकाल तक जो जड़ बुद्धि था, वही नटराजन बाद में भारत का श्रेष्ठ ब्रह्मविद हो गया, यह तो बड़ी अजीब बात है!"

पूर्व जन्म के परम शुद्ध संस्कार वश वह ब्रह्मज्ञान लेकर ही पैदा हुआ था, जो कि बहुत कम समय के लिये ही ढका हुआ था, बादलों से ढके सूर्य जैसे । सद्‌गुरु के स्पर्श मात्र से, क्षण भर में ही वह मेघ फट गया था । इसके बाद वह महासूर्य जैसे ज्योतिमान हो उठा था ।"

"इस ब्रह्मज्ञान को पूर्व जन्म में उसने किस तरह उपलब्ध किया था ?"

"पूर्व जन्म में वह कृष्ण सखा था, कृष्ण शिष्य अर्जुन । पहले से ही वह अंतब्रह्म में अधीष्ठित था, अब उसने परा ब्रह्म में स्थिति लाभ किया । उसका अभीष्ट पूर्ण हो गया ।"

वर्तमान कलियुग में, ईश्वर द्वारा प्रदत्त महाशक्ति लेकर जो ईश्वर की सृष्टि को रुपान्तरित करना चाहते हैं, ऐसे बहुत से लोगों का आविर्भाव हुआ है । पूर्ण ब्रह्मज्ञ महात्माओं की दृष्टि में कलि-काल की यही सबसे बड़ी समस्या तथा विपत्ति है । इस विपत्ति से उद्वार करने वाले एक मात्र स्वयं ब्रह्म ही हैं, मनुष्य योनि से उद्भूत, स्वयं ब्रह्म ।

योगीश्वर कालीपद गुहाराय के मुख से ही सुना है, ऐसे महा-साधक इन दिनों, इस युग-संधिकाल में आविर्भूत हुए थे, जिन्होंने सौ विश्वामित्रों की शक्ति धारण कर ली थी । उनकी शक्ति हरण करना, उनका दमन एवं उनको ईश्वरमुखी करके उनकी तपस्या को सार्थकता प्रदान करने की भूमिका भी श्री श्री योगीश्वर की थी।

उनके इस भूमिका की अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ ज्ञात हैं । उनमें से केवल दो घटनाओं का संक्षेप में यहाँ उल्लेख करुँगा ।

१६४८ साल की घटना । बंधुवर हेरम्ब मुकर्जी, उन दिनों खूब उत्साह पूर्वक नाना प्रकार के व्यवसाय करते थे । बर्ड कंपनी के एक कागज मिल से उन्होंने काफी रुपयों की सबई घास की सप्लाई का आर्डर पाया । अब उसे पहुँचाने की व्यवस्था करनी

होगी। इसके लिये उन्हें नेपाल की तराई में जाना होगा।

एक दिन आकर उन्होंने कालीदा से कहा, "चलिये, नेपाल तराई में कुछ दिन विश्राम कर आइये। आपको यथा साध्य, आराम से रखने की व्यवस्था करुँगा, लेशमात्र भी असुविधा नहीं होगी। हम लोग बगहा नामक स्थान पर ठहरेंगे। वहाँ के वन विभाग के रेंजर को मैंने पहले ही पत्र लिख दिया है। उसके बंगले के शांतिमय वातावरण में आप वहाँ रहेंगे, तथा मैं अपने माल के निकासी की व्यवस्था करुँगा।"

श्री युक्त कालीदा, तुरत राजी हो गये। दूसरे ही दिन मुझसे कहा, "हेरम्ब बाबू का कोई कार्य संपन्न हो सकेगा, ऐसा नहीं लगता। बर्ड कंपनी के 'भेस्टेड इन्टरेस्ट' के लोग ही बाधा देंगे, तथा उनका कार्य नष्ट करेंगे।"

"फिर आप अनर्थक इतनी दूर जा ही क्यों रहे हैं। मैंने प्रश्न किया।"

"वहाँ मेरा कुछ जरुरी कार्य है, जो कि पहले से ही निर्धारित है। हेरम्ब बाबू तो निमित्त मात्र हैं। जो भी हो, दोनों को इस 'ट्रिप' में प्रचुर विश्राम मिलेगा।"

बगहा फारेस्ट रेस्ट हाउस के सुसज्जित बंगले में दोनों ठहरे। दोनों समय बाबर्ची द्वारा बनाया हुआ मांसाहारी भोजन चल रहा है। श्री युक्त कालीदा, पास के वनांचल में घूम-फिर कर, इजी चेयर में बैठ कर समय काट रहे हैं, तथा हेरम्ब बाबू सबई घास की खोज में निकल पड़ते हैं।

रात में अगल-बगल के ही कमरा में दोनों सोते हैं। प्रायः डिनर के बाद दोनों में गपशप चलती है। सोते-सोते रात के बारह-एक भी बज जाते हैं। उस दिन भी यही हुआ।

सहसा रात दो बजे परिचित कण्ठ-स्वर सुन कर कालीदा की नींद टूट गयी। देखा, पास ही छोटे कर्त्ता खड़े हैं, जो 'बंधु' के प्रधान

सहयोगी हैं ।

व्यग्रता पूर्वक उन्होंने कहा, "जल्दी उठ जाओ, अत्यन्त जरुरी कार्य है । तुरत हाथ-मुँह धोकर तथा कपड़े पहन कर बाहर आओ ।"

घर से बाहर निकलने के समय, उन्होंने फिर कहा, "अपना बगल वाला तकिया चारपाई के बीच में रखकर कंबल से ढक डालो ! श्री मान हेरम्ब तुम्हें बहुत स्नेह करता है, तथा सेवा में तत्पर है । रात में वह एक-दो बार उठ कर इस घर में आता है,यह देखने के लिए कि तुम्हारे सोने मे कोई असुविधा तो नहीं हो रही है।"

आदेशानुसार कार्य समाप्त करने के बाद कालीदा, छोटे कर्त्ता के साथ बाहर आये। इस प्रसंग में कलकत्ता वापस आने पर जिस अलौकिक कहानी का वर्णन उन्होंने किया था, उसे दे रहा हूँ :

छोटे कर्त्ता जोर से कालीदा का हाथ पकड़ने के साथ-साथ ही सों करके ऊर्ध्व आकाश मार्ग से उड़ चले । पन्द्रह मिनट के भीतर ही एक पर्वत की गुफा के सामने पहुँचे ।

गुफा के भीतर मृदु शुभ्र प्रकाश की द्युति झलक रही है। एक प्रौढ़ तपस्वी के शरीर से प्रकाश निकल रहा है।

छोटे कर्त्ता ने उद्विग्न स्वर में कालीदा के कानों में कहा, "लग्न उपस्थित है, अब तपस्वी अपनी संकल्प वाणी का उच्चारण कर,होम कुण्ड में पूर्णाहुति देगा। क्षण भर भी देरी न करो, जाकर उसकी तमाम शक्ति का आकर्षण कर डालो "

अब गुफा के भीतर योगीश्वर ने धीरे-धीरे प्रवेश किया । सामने खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाकर उन्होंने कहा, "तिष्ठ" ।

साथ-साथ ही द्विदल से एक अत्युज्वल ज्योति का प्रवाह निकल कर इस तपस्वी के शरीर को आवेष्टित कर गया। क्षण भर बाद वह ज्योति उनके शरीर में फिर वापस आ गयी।

गुहास्थित तपस्वी हाथ जोड़कर निर्निमेष देख रहे हैं, तथा

दोनों नेत्रों से अश्रुधारा झड़ रही है काँपते स्वर में उन्होंने कहा, "प्रभु तुम आये हो ?"

"हाँ वत्स", योगीश्वर ने उत्तर दिया। उनका दाहिना हाथ उस समय वराभय मुद्रा में उठ गया।

"परन्तु, मेरा अभीष्ठ तो सिद्ध हुआ नहीं ? इतने दिनों की तपस्या व्यर्थ हो गयी। संकल्पित पूर्णाहुति में बाधा पड़ गयी। प्रभु तुमने स्वयं प्रकट होकर यह कार्य क्यों किया ? मेरी अर्जित सभी महाशक्ति का तुमने आकर्षण कर लिया ! अब मैं क्या करूँगा ?"

"कुछ भी नहीं करना होगा। नई सृष्टि के जिस संकल्प को लेकर तुमने पचास वर्ष सिद्धासन में बैठ कर काट दिये,अब उस संकल्प का विसर्जन इसी होम कुण्ड में कर डालो। अब तुम मेरे हो जाओ और अपनी सारी सत्ता मुझ में मिला डालो।"

कमण्डलु का सारा जल होमकुण्ड में डालकर महातपस्वी आसन छोड़कर उठ पड़े और श्री श्री योगीश्वर के चरणों में साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में लोट पड़े।

इस प्रसंग में श्री युक्त कालीदा ने फिर कहा था, इन महात्मा ने योग और तंत्र के शिखर पर बैठ कर तथा प्रकृति को वश में करके एक विराट काण्ड शुरू कर दिया था। ईश्वरीय विधान को छोड़ कर, अपने योगवल से उन्नत सृष्टि रचना का उनका संकल्प व्यर्थ हो गया, किन्तु साधन शक्ति के कारण वे ईश्वर कृपा से परब्रह्म की परम सत्ता में विलीन हो गये।

१९५० साल की जुलाई का महीना। उस समय तक कलकत्ता में वर्षा बहुत कम हुई थी। गर्मी के कारण सभी बेचैन थे। कई दिनों से श्रीयुक्त कालीदा के कमरे में मैं नहीं सो पा रहा हूँ। कमरा दक्षिण की ओर से बन्द है तथा इसके अलावा कालीदा पंखे का व्यवहार बहुत कम करते हैं। हेम सोमदा गर्मी के कारण कई दिनों से छत पर जाकर सोते हैं। कई दिनों से कालीदा अपने घर में अकेले ही रह रहे हैं।

इन्हीं दिनों एक विस्मय पूर्ण अलौकिक घटना घट गयी। सौभाग्यवश दूसरे दिन प्रातः ही मैंने और हेम सोम दा ने श्री युक्त कालीदा के मुख से ही इसका विवरण सुना था यहाँ उसीका संक्षिप्त विवरण दे रहा हूँ—

रात के बारह बजे हैं। उस दिन श्रीयुक्त कालीदा किसी कारण से घर के सभी लोगों से क्रुद्ध हो उठे, और इसके फलस्वरूप रात्रि के भोजन के लिए मना कर दिया, तथा बिछावन पर एक पुस्तक लेकर पड़ गये। थाली में भोजन लगा कर घर की स्त्रियाँ कई बार ले आयीं, परन्तु किसी तरह उनके लिए भीउन्हें खिलाना संभव नहीं हो सका।

इस तरह कोई बहाना बनाकर प्रायः ही उनको निराहार रहते देखा जाता। दो -एक दिन बाद, बातचीत में हँस कर कहते "उस दिन एक क्रिया के अनुष्ठान का कार्य था, इसी कारण उपवास करना पड़ा। भक्त लोग तो छोड़ते नहीं हैं, इसी कारण मुझे कोई बहाना बनाना पड़ जाता है"।

उस दिन भी उन्होंने एक बहाने का आश्रय लिया था। उसके बाद, एक पुस्तक पढ़ते-पढ़ते निद्रा के वशीभूत हो गये।

दो प्रहर रात बीत चुकी है। सहसा, कमरा एक ज्योतिपुंज से आलोकित हो उठा। आस-पास दिव्य आनंद का प्रवाह उमड़ पड़ा। यह दिव्य लक्षण 'बंधु' अथवा उनके प्रधान सहयोगी छोटे कर्त्ता के आविर्भाव का ही था।

कालीदा की नींद टूट गयी। बिछावन पर हड़बड़ा कर उठ गये। आँख खोलने पर देखा कि हाथ में एक झोली लिये,छोटे कर्त्ता खड़े हैं। कह रहे हैं, "एक विराट् काण्ड प्रस्तुत है और तुम निद्रालीन हो। जल्दी आँख, मुख तथा हाथ-पैर पर जल डालकर आओ। बहुत जरुरी कार्य है। क्षण भर भी देर मत करो।"

बगल वाले बाथरुम से वापस आने पर कालीदा ने देखा कि इस

बीच उनके बिछावन के ऊपर छोटे कर्त्ता ने एक पूरा कुशासन विछा रखा है, तथा उसके ऊपर एक मन्त्रपूत नर कपाल स्थापित है, एवं मंत्र चैतन्य के सभी उपचार भी उज्जीवित हैं।

छोटे कर्त्ता ने कहा, "सब ठीक है, अब तुम क्रिया उद्यापित करो।" इस क्रिया का लक्ष्य क्या है, क्या अनुष्ठान करना होगा, क्षण भर में ही श्री श्री योगीश्वर के मानस पट पर स्फुरित हो उठा।

नर कपाल के पास ही वे आसन पर बैठ गये। दाहिना हाथ ऊपर उठा कर उन्होंने एक गंभीर घोष उच्चरित किया। द्विदल से ज्योतिर्मय महाशक्ति का एक द्युति प्रवाह बाहर निकल पड़ा।

उद्योक्ता छोटे कर्त्ता एवं योगीश्वर श्री श्री कालीदा, दोनों ही थोड़ी देर के लिये निस्पन्द तथा स्तव्ध रहे।

इसके वाद छोटे कर्ता ने नीरवता भंग की। उन्होंने शांत स्वर में कहा, "एक विराट् ध्वंस कार्य घटित हो गया। युगों से यह निर्धारित था, लग्न भी निर्दिष्ट था। तुमने आज के इस शक्ति अनुष्ठान के दूर प्रसारी प्रभाव की उपलब्धि की है ?"

"किया है"—दृढ़ स्वर में उत्तर दिया श्री श्री योगीश्वर ने।

निर्धारित शक्ति समन्वित महान क्रिया समाप्त हो गयी है। इसी कारण छोटे कर्त्ता ने शांत स्वर में बात आगे बढ़ाई।

"ये विश्व के अन्य श्रेष्ठ तांत्रिकों एवं अन्य पुराने ईश्वर विरोधी तांत्रिकों की अपेक्षा अधिक शक्ति संपन्न थे। तिब्बत एवं भारत में रहकर सौ वर्षों से ऊपर इन्होंने उच्चतम कौल साधना की है। केवल प्रकृति को वश में करना ही नहीं, लय और प्रलय की शक्ति भी इन्होंने अर्जित कर ली थी। हिमालय के पाँच पवित्रतम स्थानों पर इन्होंने साधन केन्द्रों की स्थापना की थी तथा घोर तपस्या द्वारा उच्च स्थान पर जाने की चेष्ठा में थे। उद्देश्य था, ईश्वर की सृष्टि से नाना दुख, नाना व्याधियों को

नये सिरे से हटा कर वे सजायेंगे । तुम्हारी हुंकार तथा मंत्र शक्ति के बल से उन हिमालय की बड़ी-बड़ी पहाड़ों की शृंखला टूट गयी । तप सिद्ध सभी पीठ उनके फट पड़ने से निश्चिह्न हो गये । इस तपस्वी का सारा तपोबल भी तुम्हारे द्विदल से निकले तेज के प्रवाह के कारण विनष्ट हो गया है । तुम्हारी क्रिया के कारण एक भयंकर भूकंप हो गया है । किंतु यह मनुष्य द्वारा किया गया है,—वैज्ञानिक किंवा साधारण मनुष्य, आज यह कोई नहीं जान पाया । फिर भी गनीमत यही थी कि भूकंप हिमालय के ऐसे दुर्गम क्षेत्र में हुआ, जहाँ मनुष्य क्या, मवेशी, भेड़ा तथा सरी सृप भी नहीं । तुम्हारी इस क्रिया से कोई प्राणहानि नहीं हुई । केवल महातांत्रिक के तपो सिद्ध, महाजाग्रत पीठ ही विनष्ट हुए हैं ।"

कुछ देर बाद श्री युक्त कालीदा ने हँसते हुये कहा, "अच्छा, इस काण्ड के असली कर्त्ता तो देख रहा हूँ, आप ही हैं । उपचार संग्रह से शुरु कर के बाकी निर्देश देने तक सभी कार्य आपने ही किया । फिर आप स्वयं, इन पीठों का ध्वंस कर सकते थे ।"

रस ब्रह्म, छोटे कर्त्ता ने अब अपना रस विस्तार करते हुए उत्तर दिया, "जानते हो, लार्ड किचनर से लेकर अबतक बड़े-बड़े खानदानी साहेब लोग नेपाल में सारे आडंबरों के साथ शिकार खेलने जाते रहे हैं ।"

"हाँ, आजकल भी तो इस किस्म की शिकार कहानी कभी-कभी अखबारों में देखता हूँ ।"

"इन शिकारों में क्या होता है ? वन के अंचल से बहुत से लोग हाँका करते हुए, पहले बंगाल टाइगर को खेद कर लाते हैं । इस तरफ प्रख्यात साहेब लोग, हाथी के हौदे पर राइफल लिये बैठे हैं । आस–पास उनकी सुरक्षा के लिये दक्ष शिकारी रहते हैं । बाघ के सामने आते ही शिकारी गण तथा नेपाल के राजपुरुष गण, सभी समवेत स्वर में चिल्ला पड़ते हैं, "हुजूर शूट कीजिये ।" वे सभी

अनायास ही बाघ को मार सकते हैं, फिर भी वे चुप बैठे रहते हैं। केवल महामान्य हुजूर के लिये वे मौका उपस्थित कर देते हैं। हुजूर अब आनंदपूर्वक राइफल उठाकर गोली छोड़ते हैं, और रायल बंगाल गिर पड़ता है। धन्य-धन्य स्वर गूंज उटता है। इसी तरह तुम मेरे वही 'हुजूर' हो। यह ईश्वरीय कार्य तुम्हारे द्वारा ही संपन्न होगा, यह बहुत वर्ष पहले से ही निर्दिष्ट था।"

कालीदा के हजार-हजार भक्तों ने श्री युक्त कालीदा के अपार कृपामय तथा अपार प्रेममय रुप को ही देखा है। उनके नयन लोभन रुप तथा प्राणाधिक प्रेम से वे स्वाभाविक रुप से विगलित हो उठे हैं। इसी मधुर तथा प्रेममय रुप से ही वे बहुत लोगों के आराध्य हो गये थे।

किंतु योगीश्वर श्री श्री कालीपद गुहाराय का यह महाशक्ति रुप, उनके भगवत्ता के अन्य वैशिष्ठ्य—यह शास्ता और दण्डदाता का रुप-रुद्र रस पूर्ण, प्राण कंपाने वाले रुप की बात, बहुत लोगों को ज्ञात नहीं है। इसी कारण यहाँ उसका थोड़ा परिचय देने का मैंने प्रयास किया है। इस रहस्यमय जीवन व व्यक्तित्व का सम्यक परिचय दे पाना, मनुष्य के लिये संभव नहीं है।

ले० प्रमथनाथ भट्टाचार्य

—०० —

# दादा

श्री श्री कालीदा के संबन्ध में कुछ भी कह पाना अत्यन्त कठिन है, और लिख पाना तो उससे भी अधिक जटिल। वाह्य दृष्टि से अत्यन्त सहज भाव, तथा उसी के अनुरुप अत्यन्त सहज आचरण। हम सभी ने उन्हें सहज आनन्द से पाया है तथा उनके सत्संग का लाभ उठाया हैं। हम सभी को मिला कर, उनकी एक विशाल गृहस्थी थी। हमारे प्रिय-परिजन, आत्मीय एवं अनात्मीय, जो भी स्मरण या ध्यान में थे, उन सभी से विलग न करते हुए, वे हम सभी को ग्रहण करते। वाह्य दृष्टि से अवलोकन करने पर, अनेक लोगों को, उनके विषय में पूर्णतया गृहस्थी में लिप्त संसारी जीव का ही भान होता।

हम सभी की अपनी-अपनी गृहस्थी पर उनकी पूर्ण दृष्टि रहती। कहीं भी, किसी तरह के कर्त्तव्य में, हम लोगों के लिये कोई भीत्रुटि कर सकने का कोई उपाय नहीं था। वे कहा करते, "मेरे पास जो भी आता है, उसे संसार त्याग का अदेश मैं नहीं देता। मैं, मात्र उसके संसार की परिधि बढ़ा देता हूँ।"

दादा के सान्निध्य में आकर, कोई खाली हाथ नहीं गया। जो पास आया, उसे, तथा जो पास न आ सका, उसे भी, मुक्त हस्त से उनकी कृपा- भिक्षा मिली है। उनके दान, नाना छद्म रुपों में

रहे हैं। तत्काल यह ज्ञात नहीं हो पाता—कि प्राप्ति हुई, कितनी प्राप्ति हुई ? इसका ज्ञान बाद में होता, कुछ समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् ।

दादा के समक्ष, धनी-दरिद्र, मूर्ख-पंडित, छोटे-बड़े में कोई पार्थक्य नहीं था। उनके लिये कोई भी वस्तु, तुच्छ नहीं थी । हम सभी, सज्ञान होकर जिसकी अवहेलना करते अथवा निरादर की दृष्टि से देखते, वह भी दादा के समक्ष, आदरपूर्ण व्यवहार पाते देखा जाता। दीन दुखियों के प्रति, उनकी अशेष कृपा थी, मानो रास्ते से खींच कर उसे अपने दृढ़ बाहुओं का सहारा दे देते।

दादा गिडनी आये हुए हैं, और कुछ दिन तक रुकने का कार्य-क्रम है। साथ में माँ, भाभी, दादा के पुत्र और कन्या तथा हम लोग आते-जाते रहते और, दादा जितने दिन भी साथ रखने की कृपा करते, रहकर फिर अपने-अपने स्थान पर लौट जाते।

घर के चारों ओर गहन शाल-वन है तथा आँगन में कई विशाल एवं पुरातन आम, कटहल एवं महुआ के वृक्ष हैं। बिलकुल निर्जन परिवेश। दिन में सूर्यालोक एवं रात्रि में तारों से परिपूर्ण आकाश, वृक्षों पर ज्योत्सना की आभा, झींगुरों की झंकार, सब मिलाकर एक नैसर्गिक शांतिमय परिवेश।

आँगन में एक विशाल कटहल का वृक्ष है । दादा, दिन के अधिकांश समय में इसी कटहल के नीचे, कुर्सी पर बैठे रहते हैं। हम में से जो भी उपस्थित रहते, यहीं दादा को घेर कर भीड़ लगाये रहते हैं। दादा के साथ इतने अधिक समय का सामीप्य, कलकत्ते में संभव नहीं हो पाता। पांडिचेरी से दादाजी (दोराईस्वामी) भी आये हुए हैं, इसी आकांक्षा से, कि दादा के सामीप्य का लाभ करेंगे।

एक दिन कामिनी आयी। किस तरह, तथा कैसे वह पहले पहल दादा के संपर्क में आयी, मैं नहीं जानती। फिर भी वह आयी और विशेष परिस्थितियों में आयी। कामिनी एक प्रौढ़ा लोधा

रमणी है। वह नित्य ही आने लगी। घर के पास से ही होकर, स्टेशन जाने का मार्ग है। कामिनी, घड़े में दूध लेकर, स्टेशन बेचने जाती है। साथ में रहती है, एक झोली, जिसमें वह थोड़ी-थोड़ी, दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ लेकर, वापस घर जाती। यही उसका नित्य का नियम है।

स्टेशन जाने के मार्ग से ही कामिनी आती है। देखती हूँ, दादा भी उसके आगमन की अपेक्षा करते हैं। कामिनी के आते ही हम सभी की अवहेलना कर, उसके साथ वार्त्तालाप में निमग्न हो जाते हैं। घंटों, वे उसके साथ बातें करने में व्यतीत कर देते हैं। कामिनी क्या खाती है, कौन-कौन से व्यंजन बनाना जानती है? वन में किस मिट्टी पर कन्द-शाक, प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं; महुआ के दिनों में रोज कितना महुआ खाती है? पगला हाथी बाहर निकल पड़ा था, यह खबर भी कामिनी ने ही आकर दादा को दी थी! उस पगले हाथी के कितने दाँत हैं—इत्यादि बातें उससे बराबर हो जाती। हाथी के दाँत का माप बतलाते हुए, कामिनी, पैर के अंगूठे पर भार देकर, हाथ शून्य में उठाकर खड़ी हो जाती, फिर भी हाथी के दाँत के माप का संधान नहीं मिल पाता।

दादा पूछते—हाथी, किस तरह हिलते-डुलते तुम्हारी तरफ आया था, कामिनी?

कामिनी का आँचल भूलुंठित हो जाता, माथा झुक जाता तथा दोनों हाथ हिला-हिला कर अधमुंदे नेत्रों से वह बगीचे में चलती हुई, मतवाले हाथी का अभिनय करती।

दादा हँसते।

कामिनी भी, किशोरी कन्या जैसे, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाती। हम सभी जो दूर खड़े रहते देख-देख कर हँसते।

यह घटना, नित्य ही घटती। प्रातः एवं मध्याह्न सूर्य भी दोनों

की बातचीत में बाधा उपस्थित नहीं कर पाता । कामिनी की भाषा बंगला मिश्रित थी । बोलते बोलते वह खिलखिला कर हँसती । बातचीत में भी, उसके हँसी की ही आवाज अधिक रहती ।

कामिनी के साथ दादा का यह नित्य का खेल था ।

दादा का गिडनी प्रवास, लगभग शेष हो आया । एक दिन दादा ने उससे कहा, "कामिनी, अब मैं कलकत्ता वापस चला जाऊँगा "

कामिनी मानों चौंक-सी पड़ी । कहा, क्यों जाओगे ? दादा ने उत्तर दिया, काम धाम भी तो है । नहीं करने से खाऊँगा क्या ?

कामिनी तुरत कह उठी—कहाँ जाओगे ? यहाँ तुम राजा हो कर रहोगे और मैं नित्य भिक्षाटन करके तुम्हारे भोजन की व्यवस्था करुँगी ।

उस दिन, कामिनी के एक अनोखे व्यक्तित्व का हमने दर्शन किया ।

दादा, सजल नयनों से देखते ही रह गये ।

आदिवासी, कामिनी के मुख पर, इस भाव की भाषा किसने दी—वह आजतक भी समझ नहीं पायी ।

गिडनी की मिट्टी लाल है । दादा कहते, यह तपोभूमि है ।

चर्तुदिक शाल वन है । दादा की इच्छानुसार, नित्य सन्ध्या समय, हम सभी दादाजी (दोराईस्वामी) के साथ घूमने जाते । वे भी टहलना खूब पसन्द करते । वन में, कभी एक रास्ता पकड़ते, कभी दूसरे पर निकल पड़ते । गहन वन की ओर जाने का हमें निषेध था । पूरे क्षेत्र में लोधा जाति के लोगों का निवास था । वन के कन्द-मूल से ही उनकी क्षुधा शांत होती । घर बनाना, ये जानते नहीं । एक बार सरकार ने लोधों को स्थायी रुप से बसाने के लिये, उन्हें घर बनाकर दिये, परन्तु वे घरों को छोड़कर फिर

वनों में भाग हो गये । वनों में ही ये घर का आस्वादन कर पाते हैं । अत्यन्त दरिद्र हैं । वन के भीतर जाकर, इनके शून्य घर देखने का भी मुझे अवसर मिला । कौतूहल था, इसलिये डरते डरते ही अन्दर घुसी । दीवार के नाम पर कुछ भी नहीं है । वन-प्रान्तर में डाल तथा पत्तियाँ देकर एक अस्थायी आच्छादन मात्र है । उकडूँ होकर, वे उसके भीतर घुसते हैं, तथा स्त्री-पुत्र-कन्या के साथ पाँच-सात व्यक्ति किसी तरह सिकुड कर सो जाते हैं। भयानक शीत तथा सियारों इत्यादि का भय--नहीं तो इतनी भी आवश्यकता उनकी न होती ।

उनके शरीर प्रायः नग्न ही रहते हैं, यह कहने में भी विशेष अतिषयोक्ति नहीं होगी ।

कई लोधों के पास भी जाने का अवसर मिला । अकेले जाने का तो साहस संचय नहीं कर पायी, कुछ लोगों के साथ गयी थी । जाकर यही अनुभूति हुई कि वे अत्यन्त सरल हृदय हैं ।

लोधा कहते हैं, देखो न, हमारे पास बर्त्तन-वासन नहीं, कपड़े-लत्ते नहीं, बिछाने के लिये एक दरी तक नहीं, हम सूखे पत्तों के ऊपर ही सोते हैं ।

गिडनी में बिजली-बत्ती नहीं है । घर के भीतर के लालटेन का प्रकाश, बाहर के अन्धकार को क्षीण नहीं कर पाता । दादा, दिन का अधिकांश समय कटहल के वृक्ष के नीचे व्यतीत करते हैं, तथा रात में सामने वाले घर में बैठते हैं ।

उस दिन संध्या से कुछ पूर्व ही, दादा, गेट के बराबर वाले बरामदे में जाकर, बाहर निकलने वाली सीढ़ी की ओर अभिमुख हो, बैठ गये हैं, मानों वे किसी की प्रतीक्षा में हों ।

गेट के सम्मुख ही, गिडनी का प्रधान मार्ग है । इस मार्ग पर लाल धूल डड़ाती, बस, जीप तथा बैलगाड़ियां जाती रहती है, एवं यात्रियों का भी आवागमन रहता है । यह नित्य का व्यापार है ।

आज, लगभग अंधकार में डूबे हुए, मार्ग से जाते हुए, एक व्यक्ति घर के सामने खड़ा हुआ। गेट को पार कर, वह धीरे-धीरे आगे बढ़ा, तथा दादा जिस सीढ़ी की ओर मुख किये बैठे थे, उसी पर आकर, सिर नीचा किये हुए बैठ गया।

ऐसा भान हुआ, मानो दादा ने उसे पुकार कर बुलाया है, और उस पुकार को, उसके अलावा और कोई सुन नहीं पाया है।

एक दुर्बल, अकाल-वृद्ध लोधा, जिसके शरीर पर मात्र एक लंगोटी है। आभास होता है, कि जो भी दो-चार पैसे उसे मिले हैं, उसे दुकान पर देकर 'हँड़िया' (देशी शराब) पी आया है।

धीरे-धीरे, दादा, उसके घर की खबर पूछने लगे। एक-एक बात पूछ रहे हैं, और लगता है, उसके घावों पर मरहम लगाते जा रहे हैं।

घर पर, स्त्री-पुत्र एवं कन्या सहित पाँच व्यक्तियों की गृहस्थी है। वे आस लगाये बैठे होंगे कि वह चावल लेकर वापस आ रहा होगा। परन्तु, जो कुछ भी पैसे थे, वे तो हँड़िया में शेष हो गये। आज सभी उपवास करेंगे। वैसे, उनको बिना खाये हुए भी रह लेने का अभ्यास है। सभी बच्चे, वन संग्रहीत कन्द-मूल, कुछ न कुछ खाकर रह लेंगे। रात कट ही जायगी।

—थोड़ी ही दूरी पर मैं अँधेरे में खड़ी थी। दादा ने आदेश दिया। छः व्यक्तियों के खाने लायक चावल, दाल, एवं तरकारी एक थाली में सजा कर ले आओ, इसे दो।

भोजन सामग्री, जिस तरह दान में दी जाती है, उसी तरह, थाल में सजा कर मैं ले आयी।

सुना, दादा पूछ रहे हैं—तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने कहा—अनन्त।

दादा स्निग्ध स्वर में कहने लगे 'अनन्त—अनन्त तुम अनन्त हो।' उन्होंने कहा, तुम 'हरि बोल,' 'हरिबोल' कहते रहो—तुम्हें

कोई दुःख अथवा कष्ट नहीं रहेगा।

मैंने देखा लोधा जिस समय गेट पार कर गया, ऐसा लगा, वह रो रहा है। वैसी ही भंगिभा ! नासमझ लोधा, क्या समझ रहा है—कौन जाने !

यह घटना, शांतिनिकेतन में हमारे घर की है। घर पूर्वाभिमुख है, और सामने है, चौड़ा पिच रास्ता। गेट से घर की दूरी काफी है। घर के सामने तथा पीछे; काफी जमीन है। पश्चिम की ओर, थोड़ी ही दूरी पर संथालों का ग्राम है। दाहिने तथा बायीं ओर बड़े-बड़े जलाशय हैं, और बीच में बाँध का लाल चौड़ा रास्ता। इसी बाँध के ऊपर से, हमारे घर से दक्षिण की ओर पगडन्डी जाती है, जिससे गाँव के लोग, बड़े रास्ते तक आवागमन करते हैं।

दादा आये हुए हैं। वे घर के सामने वाले खुले बरामदे में बैठे हुए हैं। मैं, मेरी माँ तथा और भी लोग साथ हैं। संध्या का समय है। दादा बातें करते जा रहे हैं, तथा हम सभी तन्मय होकर सुन रहे हैं। कब साँझ हो गयी, इसका भी ज्ञान नहीं रहा। अकस्मात् एक अपरिचित, वृद्ध संथाल, जिसके सीने की मांसपेसियाँ थल-थल कर रही है, दादा के सामने खड़ा होकर कह उठा 'बाबू, मुझे रास्ता दिखला दो'।

चटपट, हममें से दो-तीन व्यक्ति, उठ खड़े हुए। संध्या के अंधकार में, पता नहीं कैसे, वह गेट के भीतर आ गया है। वृद्ध किंकर्त्तव्यमिमूढ़ है। हममें से कोई, वृद्ध को लेकर जाते, उससे पहले ही दादा ने आगे बढ़ कर मानो उस वृद्ध को हमसे छीन सा लिया। उसे साथ लेकर, पीछे के छोटे गेट को पार करके, उसे लाल बाँध वाले ऊँचे पथ तक वे पहुँचा आये। वृद्ध, बाँध के पथ पर हिलता डुलता, अंधकार में विलीन होने लगा। दादा, उसी ओर देखते हुए, काफी समय तक, स्थिर खड़े रहे। दूर से ऐसा

लग रहा था, मानो वह विराट् मूर्त्ति, खड़े हुए, देवाधिदेव महादेव की हो ।

उस दिन, क्षण भर के लिये हृदय हाहाकार कर उठा । काश् मैं भी इसी तरह कह पाती, "दादा, पथ का संधान मुझे बतला दो"

—लेखिका-श्रीमती रानी चंदा

—oo—

कालीदा
व्दारा रचित
कई कविताएँ

आमाय होरी एईजे एदेर एतो आना गोना
एतो दिनेर एतोरवनेर एई जे जाना सोना।
किवा पेल कि पेलो ना किछुई नाहि जानी
तबू ओदेर भालोबासाय आवाक मानी आमी॥

देह जरवन शेष होय जाय थाके सुधू नाम
महाकालेर महास्त्रोते की ई वा ताहार दाम
कामना सब शेष कोरेछी किवा आमार चावा।
ओपार हते गाए लागे विदाय वेळार हावा॥

कामना कि शेष कोरेछी हय तो किछु बाकी
ताईतो ओदेर भालो बासा देह मने मारवी।
एकटि तृष्णा थाकुक आमार छाड़ते नाही चाई
जुगे-जुगे फिरे-फिरे ओदेर जेनो पाई

आमाय होरी आमाय हेरी पेलो जारा सुरव
परम रवने परम धने भरुक तादेर बूक॥

२४-११-९०
मानसरोवर

[मुझे घेर कर यह जो इनका इतना आना-जाना
इतने दिन का, इतने क्षण का, जाना-सुना पुराना
नहीं जानता, क्या पाया, क्या नहीं इन्होंने पाया
फिर भी इनका स्नेह-भाव, मुझको अवाक् हिय भाया
देह शेष हो जाती है जब, रहता केवल नाम
महाकाल के महा स्रोत में, इसका ही क्या दाम
शेष सभी हो गई कामना, चाह जगे क्या मन में
हवा, विदा-वेला की, उस तट से, आ लगती तन में
कर दी शेष कामनाएँ, या बाकी कोई जी की
अतः लगाता जाता तन में, मन में प्रीति इन्ही की
नहीं चाहता छोड़ूँ, तृष्णा एक, जगी जो मन में
फिर-फिर पाऊँ, जहाँ-कहीं भी रहूँ, इन्हें युग-युग में
घेर हेर कर मुझे, रहे सुख पाते जो, आ–आकर
हृदय, परम क्षण में हो उनका पूर्ण, परम धन पाकर]

( क )

पश्चिम दिगन्ते देखि रक्तवर्ण मेघ
अत्यासन्न झटिकार दुर्बार से वेग ।
भीतत्रस्त बिहंगेर क्षुब्ध आर्त्त ध्वनि,
घन-घन गर्जमान वज्र उठे रनि :
मोर जीवनेर चित्र आंके वसुन्धरा,
ध्वंसेर आवेशे माते आजि भयंकरा ।
—हठात् स्मरणे आसे नव सूर्योदय,
विच्छुरित रश्मि माझे परम अभय ।
आनन्द अमृत झरे अजस्र धाराय
सहस्र मानिक ज्वले नयन ताराय ।
मोर जीवनेर चित्रे नाहि एर ठांई ?
बलिते पार कि केह ? काहारे सुधाई ?

( ख )

सूर्यकर दल चुमे, गन्ध हरे वायु,
लालसार लोभदृष्टि हरे परमायु ।
आनन्दित कुसुमेर सहस्त्र बन्धन :
वक्ष भरा मधु तबु करे जे क्रन्दन ।
अलिर गुंजन आने आनन्देर बान,
उत्सारित करे मधु-अपरुप दान ।
—ए आगार चतुर्दिके सहस्र बन्दन ।
परिपूर्ण आकर्षणे करे आलिंगन
रमणीर रुपच्छटा, अर्थ जादुकरी,

यशेर पिपासा नित्य रचे मायापुरीः
तबु निःस्व हई नाई, गुप्त हिया तले
अपरुप फल्गु धारा अविराम चले ।
मधु भरा कुसुमेर मत आछि आमि-
भ्रमरेर मत तारे नेवे ना कि, स्वामि ।।

(ग)

माधुर्येर रसे गाढ़ तव लिपिखानि
स्मृतिर बीनाय आने विस्मृत रागिनी—
जाग्रत यौवन स्वप्न क्षणेकेर तरे
लघुपाक प्रसारिया एल चित्त' परे
कि उद्दाम प्राण शक्ति कि गभीर आशा
कि दुर्दम गतिवेग कि से भालोबासा
रूपोज्वल छरनीर कि से दीप्त छवि
उज्वल प्राणेर स्रोते जेगेछिल कवि
सर्वरुप अन्तराले अरुपेर सुर
हृदय कन्दर आज करे भरपूर
अन्तराले एकई सुर ताहारि प्रकाश
बाँशरीर रन्ध्रे वैचित्र्य आभास
खण्डेर आड़ाले बाजे अखण्डेर छवि
उल्लसित चित्त मोर आजऊ कवि
दूरे थाक् तत्वजाल शास्त्र कुज्झोटिका
प्रदीप्त प्रेमेर तुमि लह जयटि का ।
सहज आनन्द धन रसेर उत्सार
निर्विघ्ने उत्तीर्ण तुमि शास्त्र पारावार ।
भक्तजने भक्तिभरे करे स्तुति स्तव
तुमि थाको' वक्ष जुड़ि अक्षय वैभव ।।

( घ )

रुपे रसे पर्णे हर्षे आमारई विकाश
ताहादेरई सर्वनाशे आमार प्रकाश
किछु भ्रान्ति किछु मोह ना यदि वा थाके
सोहागे निविड़ करि जड़ाइब काके ?
आमार परिधि ये गो दिगन्त विस्त्रित
आमार अन्तरे ये गो भुवन आश्रित
हासि निया ये आसे गो बुके देह ठाँई
पलकेर पुलकित से आमि ये नाई
आमारे राखिबे लिखे क्षमता एमनई
एई ये विराट विश्व, अमिई लेखनी ।।

५-३-५८
'बसुभिला'
गिडनी

घुमिये आछि, घुमिये आछि
घुमिये आछि आमि,
कखन एले आलोक धाराय
चोखेर परे नामि ।
एमनि करे नाथ, तोमार दृष्टि पात
नयन के मोर टाने ना तो
माझपथे जाय थामि ।
भालोबासार नेशा, रक्ते आमार मेशा
कतई ना मोर कांगालपना
नित्य दिवस यामी
तुमि तो नाथ मृदु हेसे
बल, सबाई भालोवेसे
मोर चरणेर पाशे एसे,
थम्के दाँड़ाओ थामि, ।
माझे-माझे चमके उठि
तोमार कथा शुने,
तबु, रंगीन प्रजापतिर
जाल चलेछि बुने ।
वाहुते मोर कारे जड़ाई
कार मालिका गलाय पड़ाई
कोन अमृत कार परशे
वक्षे आसे नामि ।
रुपेर रसेर सम्मिलने
मन मरे जाय मने मने
कोन प्लावने डुबे गेल

आमार सकल भूमि;—
हृदयवेशेर आड़ाले नाथ—
सेकि तुमि-सेकि तुमि ?

७-१-५८
वसुमिला,
गिडनी

रुपेर माझारे खुँजि अरुपेर धन
सब किछु पेयेछि तो–तबु अकिंचन ।
रुपे रसे भरा एई धरनीर छवि,
तारे चेये, तारे पेये, जेगेछिल कवि ।
सेदिनेर नाना फूले गेँथेछिनु–माला,
छिल मधु, छिल हूल, छिल किछु ज्वाला ।
यत फूल यत भूल सब भालोबासि;
अन्तरे आनन्द छिल, मुखे छिलो हासि ।
हेन काले के ये एलो, कि शुनिनु काने;
सब किछु मेरे गेलो शुधु एक गाने ।
रुपेर पिछने देखि कार हातछानि,
गानेर अन्तरे बाजे निःशब्द रागिनी ।
खण्डेर आड़ाले आछे अखंडेर छाबि ।
सेई मिल धरियाछि, ताई आमि कवि ।

जोयार तोमार मने तुलियाछ ढेऊ
आज कि तोमार पथे वाँधा रबे केऊ।
तोमार जीवन नदी लभे नव बाँक,
सब काने दिये शोन सागरेर डाक ।

३-३-५८
'बसुभिला'
गिडनी

आमार बीनाय तोमार सुरटी
नतुन करे बाजे,
सेई पुरातन तुमिई से गो
एले नतुन साजे ।
मोर सागरेर बुके कखन
जागे तोमार ढेउ,
आमिई जानि आर तो ताहा
जाने ताको केऊ,
नतुन दिनेर नतुन बानी
किईबा ताहार माने,
पुरानो ढेऊ फिरे आसे
नतुन दिनेर बाने ।
सेई पुरातन गानेर कथा
नतुन सुरे दोले,

नतुन या,ता, लुकिये थाके
पुरातनेर कोले।
जोयार से भेसे आसे
आमार कूले-कूले
भाटाय तारे फिरिये छिलेम
से कथा जाई भूले।
मेघ हये जे ढेले दिलेम
आमार जत जल,
वाष्प हये फिरे एसे
बाड़ाय मेघेर बल,
सेइ पुरातन तुमि उगो
सेई पुरातन आमि,
सेई पुरानो लुकोचुरि
चलछे दिवायामी,
आँकेर फाँदे महाकाले के
खण्ड-खण्ड करि,
वर्ष मासेर हिसेब दिये
पांजीर पाता भरि।

पुरनो दिन फिरे एले
नतुन करे जागी
नतुन-नतुन बले तारि
आवाहने लागि।
केबा नतुन के पुरातन
केमन करे बुझि,

महाकालेर बुके ढालि
आमार कालेर पूँजि,
देय ना तो एर कोनो जबाब
महाकालेर बीन्
तबू आसे नतुन बछर
आसे नतुन दिन।
ताई तो आबार तोमाय आमि
नतुन करे चाई
नतुन कथाइ नतुन सुरे
पुरानो गान गाई।
एई एपारे बाँशी आमार
भरलो गाने-गाने,
पौंछे कि ता ओ ओपारे
तोमार काने-काने ?

१ ला बैशाख
१३६६